भाग २० ] जून, सन् १९३२ [ पूर्ण संख्या २७

सम्पादक

वार्षिक मूल्य २) श्री विश्वप्रकाश, बी० ए०, एल-एल० बी० एक प्रति का ।)
विदेश के लिये ३॥) श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०

भाग ३ ] जून, सन १९३१ [ पूर्ण संख्या २७

सम्पादक

वार्षिक मूल्य ३) श्री विश्वप्रकाश, बी० ए०, एल-एल०बी० एक प्रति का ।)
विदेश के लिये ३॥) श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०

# विषय-सूची



# वेदोदय के नियम

१—"वेदोदय"-प्रत्येक अंग्रेजी महीने की १ तारीख को प्रकाशित होता है।

२—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से २), बी० पी० से २।=), विदेश से २॥), नमूने का अङ्क।) के टिकट आने पर भेजा जाता है।

३—"वेदोदय" का वर्ष चैत्र मास से प्रारम्भ होता है, किन्तु साल के अन्दर किसी भी मास से ग्राहक श्रेणी में नाम लिखाया जा सकता है।

४—पत्र आदि लिखते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर स्पष्ट अक्षर में लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिये।

५—यदि ३ मास तक के लिए ही पता बदलवाना हो, तो अपने डाकखाने में ही प्रबंध कर लेना चाहिए। कार्यालय में तभी लिखना चाहिए, जब कि पता अधिक समय के लिए बदलवाना हो।

६—हर एक ग्राहक के नाम वेदोदय बड़ी सावधानी से कई बार जांच कर भेजा जाता है, यदि १५ ता० तक ग्राहक महाशय को पत्र न मिले, तो समझना चाहिए कि किसी सज्जन ने बीच में ही वेदोदय को गायब कर लिया है। ऐसी दशा में पहिले अपने डाकखाने में लिखा-पढ़ी करना चाहिये और इसपर भी वेदोदय न मिले, तो डाकखाने के जवाब सहित कार्यालय में इसकी सूचना भेजने पर दूसरी प्रति भेज दी जावेगी।

७—लेखों को छापने न छापने या न्यूनाधिक करने का अधिकार सम्पादक को है।

ओ३म्
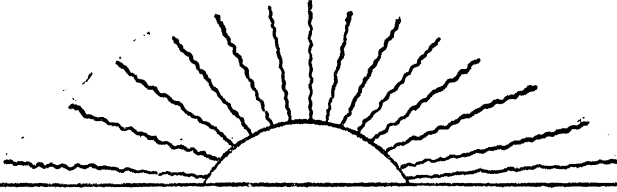
पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति

[ अथर्ववेद १३ । ४ । १ । १ ]

जब वह उदय होता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती हैं।

*From west to east are lit up all, when he rises & shines.*

भाग ५ | वैशाख संवत् १९८९, दयानन्दाब्द १०८, जून १९३२, आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३३ | संख्या ३ पू सं. २७

# मृला सुक्षत्र मृलय !

[ ऋग्वेद ७।८९।१—४ का भावार्थ ]

[ श्री हरिशरण जी श्रीवास्तव "मराल" बी० ए०, एल०एल० बी०, मेरठ ]

[ १ ]

वरणीय तेज वाले ! आया शरण हूं तेरे।

ऐसी कृपा हो फिर ये मिट्टी का घर न घेरे॥

विचरूं स्वतन्त्र तुझमें, सुख की सुधा चखाओ।

स्वामिन् ! दया दिखाओ, स्वामिन् ! दया दिखाओ॥

[ २ ]

जलधर समान कम्पित, भय से सशङ्क आऊँ।
हे मन्यु दण्ड तेरा कर याद, जल मनाऊँ॥
तब सर्व-शक्ति वाले! अपना समझ उठाओ।
स्वामिन्! दया दिखाओ, स्वामिन् दया दिखाओ॥

[ ३ ]

सामर्थ्य-हीन हूँ मैं, अति दीन दास तेरा।
कर्तव्य कर्म्म वैदिक करने से मुंह है फेरा॥
फिर भी पिता समझ कर, विनती करूँ निभाओ।
स्वामिन्! दया दिखाओ, स्वामिन्! दया दिखाओ॥

[ ४ ]

जल में खड़ा हुआ हूं, गुण गान कर रहा हूँ।
तो भी तृषा के मारे, भगवान्! मर रहा हूं॥
तृष्णा बुझने वाले! प्यासे को मत सताओ।
स्वामिन्! दया दिखाओ, स्वामिन्! दया दिखाओ॥
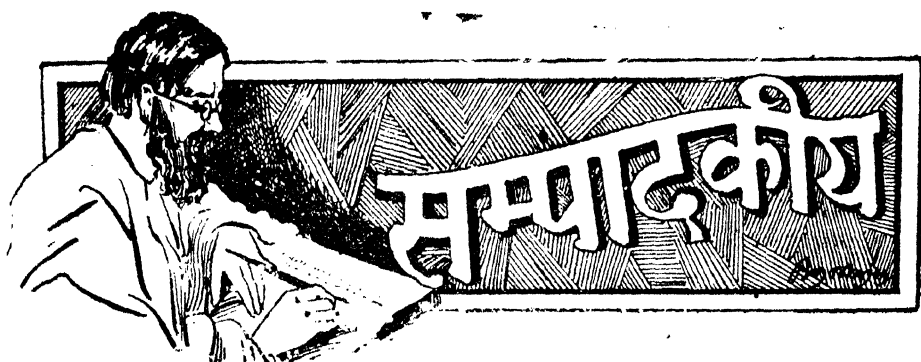
## हमारे उपदेशक

[ २ ]

पिछले अङ्क में भजनीकों के विषय में कुछ लिखा जा चुका है। आज उपदेशकों के बारे में कुछ लिखा जायगा। उपदेशक वे कहे जाते हैं जो भजन नहीं गाते, केवल व्याख्यान ही दिया करते हैं।

इस समय प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं में उपदेशक रक्खे जाने की प्रथा है। इसके अतिरिक्त सभी बड़ी बड़ी समाजों में उपदेशक रक्खे जाते हैं। जो काम उनके द्वारा हो रहा है वह सराहनीय ही है। उपदेशक लगन से काम करते हैं। परन्तु आर्य्यसमाज में एक बात की कमी है। यहां पर उपदेशकों की ट्रेनिंग का कोई प्रबन्ध नहीं। जिसकी आवाज़ बुलन्द है, जिसको जनता के सामने खड़े होने में झिझक नहीं वह आसानी से उपदेशक बन जाता है।

यही कारण है कि बहुत से उपदेशक ऐसे पाये जाते हैं जो समझ सूझ कर व्याख्यान नहीं देते। उनके कारण बिचारे आर्य्यसमाज के कार्य्यकर्ताओं को आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। वे कभी २ अन्य धर्मावलम्बियों का खंडन इतने कटु शब्दों में कर देते हैं कि मार पीट की नौबत आजाती है। या वे आर्य्यसमाज के प्लेट फार्म से सरकार के प्रति ऐसे शब्द कह बैठते हैं कि मुकदमे की नौबत आती है। उसमें वे ही अकेले नहीं फंसते बल्कि और लोगों को फंसना पड़ता है।

उपदेशक का काम कोई सरल नहीं यह बहुत बड़े उत्तरदायित्व का काम है। जो मनुष्य दूसरे के जीवन का ठेकेदार बनता है, उसका अपना जीवन आदर्श होना चाहिये नहीं तो वह दूसरे के जीवन को उच्च बनाना तो दूर रहा वह दूसरे के जीवन को मटियामेट कर सकता है।

उपदेशक में दो गुण होने चाहिये। उच्च शिक्षा तथा सदाचार का जीवन। सदाचारी होना बहुत आवश्यक है पर

केवल सदाचारी होने से ही काम नहीं चल सकता। विद्वत्ता सदाचार को और बढ़ा सकती है। सदाचार में आकर्षण होता है, विद्वत्ता में एक दूसरे प्रकार का आकर्षण है। यह दोनों आकर्षण जब एक साथ मिल जाते हैं तो फिर कहना ही क्या है?

उपदेशक होने के पहले कुछ पुस्तकों का ज्ञान हो जाना बहुत आवश्यक है। यदि किसी स्थान पर उपदेशक विद्यालय होते तो यह काम बहुत अच्छी तरह निकल सकता। लाहौर में इस प्रकार का एक विद्यालय खुला हुआ है, परन्तु उपदेशकों की भर्ती होने के समय इस बात पर विचार नहीं किया जाता कि उन्होंने किसी स्थान पर उपदेशकी की शिक्षा प्राप्त की है। भाग्यवश इस समय गुरुकुल के स्नातक बहुत विद्वान् और सुन्दर व्याख्याता निकल रहे हैं और इनसे हमारी बहुत आशायें हैं। परन्तु इस तरह के उपदेशक बहुत कम हैं।

विद्वत्ता तथा आचार के अतिरिक्त हमारे उपदेशकों में एक और बड़ी कमी पाई जाती है। अब तक प्रचार की ऐसी पद्धति रही है कि हम उपदेशकों के लिये प्लेटफार्म तय्यार करके रखते हैं। उपदेशक महाशय रेल से उतरे और प्लेटफार्म पर जाकर गर्जने लगे। उपदेशकों को पिंडाल तथा जनता मिल जाती है। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि आर्य्य समाज के उपदेशकों में मिशनरी स्प्रिट नहीं रहती। यदि सहन-शीलता की मूर्ति देखनी हो तो ईसाइयों के प्रचारकों में देखिये। ईसाई प्रत्येक हिन्दुओं के मेलों पर प्रचार करने जाते हैं। पर हिन्दुओं का व्यवहार इनके प्रति अच्छा नहीं होता। जो आता है वही चार बातें सुना जाता है। कभी कभी कुछ लोग पिंडाल में इतनी गड़बड़ी मचा देते हैं कि उन बिचारों को कुछ समय के लिये अपना काम बन्द कर देना पड़ता है। वे सहनशीलता के साथ हंसते हंसते यह सब बरदाश्त कर लेते हैं। उनको कभी शिकायत नहीं होती कि उनके साथ इस प्रकार का व्यवहार हो रहा है। जब लोग चले जाते हैं तो वे फिर अपना काम आरम्भ कर देते हैं।

मैं समझता हूं कि इतनी सहनशीलता हममें नहीं है। यदि हम उनकी स्थिति में रख दिये जायें तो सिर अवश्य ही फूट जावे। हमारे उपदेशक यदि किसी स्थान पर भेज दिये जाते हैं तो वे आर्य्यसमाजों के मन्त्रियों की खोज करते हैं। यदि चार दिन मन्त्री महोदय न मिलें तो वे कुछ भी काम न कर सकेंगे। इसका कारण यही है कि हम कार्य करना नहीं जानते। ईसाई मिशनरियों की अवस्था इसके बिल्कुल विप-

रीत है। पहाड़ी तथा जङ्गली जातियों में जहां मनुष्य के लिये पहुंचना सुगम नहीं वहां पर ईसाइयों के मिशन बने हुये हैं। यूरोप तथा अमरीका ऐसे सर्द मुल्कों के रहने वाले भारतवर्ष तथा उससे भी अधिक गर्म मुल्कों में पहुंच जाते हैं। जङ्गली जातियां जो एक दूसरे को मारकर खा जाती हैं उनमें भी यह लोग पाये जाते हैं। न ये उनकी भाषा जानते हैं और न उनके रहने सहने से परिचित हैं। हम लोगों में इस प्रकार की स्प्रिट बहुत कम है। पंडित लेखराम के लिये प्लेटफार्म की आवश्यकता न थी, स्वामी श्रद्धानन्द को प्लेटफार्म की चाह न थी। वे स्वयं अपना प्लेटफार्म बनाना जानते थे। पर हमारे उपदेशकों को इसकी आवश्यकता रहती है।

आर्य्यसमाज की सफलता इस बात में अब तक बराबर रही है कि इसको श्रोताओं का अभाव नहीं रहा। जनता को आकृष्ट करना हमको आता है, पर एक बात माननी पड़ेगी कि हमने जनता के मस्तिष्कों को दूषित कर दिया है। जनता को आकर्षित करने की कसौटी "गाली देना" है। जो उपदेशक दूसरे मतवालों का बेजा मजाक उड़ाता है, लोग उस पर लट्टू हो जाते हैं कि वाह क्या बढ़िया दलील दी। कभी २ आर्य्यसमाज के उपदेशक शब्दों की ऐसी तोड़ मरोड़ दिखाते हैं जैसे कि उनको भाषा विज्ञान का बड़ा ज्ञान है। जिस व्याख्यान में कुरान की आयतें ज्यादा सुनाई जाती हैं वह रोचक कहा जाता है। जो वेदों के मन्त्र सुनाता है उसको या विद्वान् कहते या भोंदू। यही कारण है कि बहुत से विद्वानों के व्याख्यान होते ही जनता उठ जाती है या वे भी उन तरकीबों का काम लेने लगते हैं जो उनके साथी लेते थे।

यही कारण है कि हमारे प्रचार में इतनी शिथिलता है।

---

## स्त्री तथा शूद्रों को मंत्रों का अधिकार

इधर कई शताब्दियों से भारतवर्ष में यह प्रथा चल पड़ी थी कि स्त्रियों तथा शूद्रों को वेदों के पढ़ने का अधिकार नहीं था। और इस विचार से प्रभावित होकर हिन्दू जाति ने स्त्रियों और शूद्रों को वेद मंत्रों से बहुत दूर रक्खा। यह प्रथा यहाँ तक बढ़ी कि यदि धोके से भी वेद के मंत्र किसी के कान में पहुँच जाते थे तो उसके कानों में सीसा गला दिया जाता था। पर अब यह विचार उठ गये हैं। सनातन धर्म के प्रमुख नेता श्री पूज्य मालवीय जी ने अब शूद्रों को भी मंत्रों का अधिकारी बना दिया है और वे इसके प्रचार का प्रयत्न कर रहे हैं।

अभी थोड़े दिन हुये उन्होंने लिखा था:—

"यह बात सभी विद्वान् जानते हैं कि पृथ्वी-मण्डल पर वेद के समान प्राचीन कोई ग्रन्थ नहीं है। वेद सब धर्मों का मूल है और वह जगत् के समस्त प्राणियों के हित के लिए है। यह विदित है कि वेद की चारों संहिताओं में एक एक अक्षर के उच्चारण करने के उदात्त, अनुदात्त अथवा स्वरित स्वर नियत हैं। पूर्वकाल में द्विजों की कन्याओं का उपनयन संस्कार होता था और वेद उनको पढ़ाया जाता था। किन्तु वर्तमान काल में यह प्रथा बन्द कर दी गई और चिर प्रचलित मर्यादा के अनुसार विधि पूर्वक ब्रह्मचर्य के साथ शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन छः अङ्गों के साथ स्वरसंयुक्त वेद उन्हीं द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के बालकों को पढ़ाया जाता था, जिनका शास्त्र रीति से उपनयन संस्कार किया जाता था और जिनसे कठोर नियमों का पालन कराया जाता था और न केवल शूद्रों को, किन्तु ब्रह्मवादियों को छोड़कर सामान्यतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य स्त्रियों को भी वेद नहीं पढ़ाया जाता था।

"किन्तु ऋषियों को यह इष्ट था कि सब प्राणियों को वेद के उपदेश का लाभ प्राप्त हो। इसलिये ऋषियों ने वेद का अर्थ लोक-भाषा में प्रकाश करना अपना कर्त्तव्य समझा और महर्षि वेदव्यासजी ने लोकहित के लिये एक वेद को ऋक्, यजु, साम, अथर्व नाम के चार विभागों में बाँटकर पीछे वेद का अर्थ अपने समय की लोक-भाषा संस्कृत में, 'श्रीमन्महाभारत' में सब प्राणियों के हित के लिए और विशेष कर स्त्री और शूद्र तथा उन और लोगों के लिए जिनको वेद नहीं पढ़ाया जाता था, बहुत उत्तमरूप से प्रकाशित किया।

"पुराणों में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पुराण चारों वर्णों के लिये कल्याणकारी हैं, किन्तु स्त्री और शूद्रों के लिए विशेष मङ्गलकारी हैं।

"जब शूद्रों को पुराणों के पढ़ने का अधिकार है, तो यह भी आप ही सिद्ध है कि उन पुराणों के अन्तर्गत मंत्रों के उच्चारण करने का उनको भी अधिकार है। पुराणों में जो अनेक मंत्र आये हैं, उनका आरम्भ ॐकार से होता है, इसलिये सब पुराण के पढ़ने के अधिकारियों को ॐकार सहित मंत्रों के उच्चारण करने का अधिकार है।"

---

( २७ )

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः ।
मृला सुक्षत्र मृलय ॥

( ऋ० ७।८९।२ )

( अद्रिवः ) हे निश्चल ईश्वर ( यद् ) जो मैं ( ध्मातो ) हवा से भरी हुई ( दृतिः ) मशक के ( न ) समान ( प्रस्फुरन् इव ) कांपता हुआ जैसा ( एमि ) चलता हूं । ( सुक्षत्र ) हे अच्छी तरह रक्षा करने वाले भगवन् (आ मृल ) मुझे सुख दीजिये ( मृलये ) मेरे ऊपर दया कीजिये ।

इस मंत्र में जीव और ब्रह्म का अलग अलग रूप दिखाया गया है। ईश्वर के लिये "अद्रिवः" शब्द आया है । 'अद्रि' का अर्थ है पहाड़ या पत्थर । 'अद्रिवः' का अर्थ हुआ पहाड़ के समान निश्चल। परमात्मा अटल है। उसमें किसी प्रकार की चलायमानता या चंचलता नहीं है। परन्तु जीव इससे सर्वथा विपरीत है। उसमें अत्यन्त चलायमानता है। इस चलायमानता के लिये वेद में दो उपमायें दी गई हैं। एक तो 'दृति' की। दृति चमड़े की मशक सी होती है। इसमें हवा भर कर तैरने के काम में लाते हैं। जैसे लोग टीन के पीपों को जोड़कर तमेड़ बना लेते हैं या किसी अन्य हलके पदार्थ के सहारे तैरते हैं उसी प्रकार की दृति होती है। हवा भरने से यह इतनी हलकी हो जाती है कि पानी के ऊपर बिना विशेष प्रयत्न के तैरने लगती है। बस जो हाल जल में दृति का है वही इस संसार सागर में जीव का है। दृति भी ज़रा से हवा के झोंके से बहने लगती है और जीव को भी संसार की साधारण सी हवायें विचलित कर देती हैं। दूसरी उपमा दी है "कांपती हुई चीज की।" 'प्रस्फुरन्' का अर्थ है 'कांपना'।

हमारा चंचल मन हर समय कांपता रहता है और इस मन के कारण हमारी डांवाडोल हालत रहती है। यदि हमारी चलायमानता बन्द हो या कम हो तो फिर हमको कोई दुख न रहे। इसीलिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हे ईश्वर, हम तो चलायमान हैं और आप निश्चल है। आप में ध्यान लगाने से ही हमारी चंचलता दूर हो सकती है। इसलिये आप हमारे ऊपर दया कीजिये जिससे हमको सुख मिले।

वस्तुतः जीव का चलायमान होना ही दुख है और निश्चलता आना ही शान्ति सूचक है।

# भारतवर्षीय आर्य्य

पं० शिवशर्मा जी महोपदेशक, आर्य प्रतिनिधि सभा,
संयुक्तप्रान्त

[ भाग ४ संख्या २४ से आगे ]

पाठकगण ! हम पूर्वाङ्कों में यह बता चुके हैं कि मनु महाराज किसी जाति विशेष से घृणा करना अथवा उसको धर्माधिकार से वञ्चित रखने की आज्ञा नहीं देते, किन्तु केवल अनधिकार चेष्टा करने वाले को दण्डनीय ठहराते हैं। जहाँ कहीं इस प्रकार की गन्ध वा स्पष्ट आज्ञा पाई भी जाती है वह किसी जाति द्वेषी का कुकृत्य है। आर्य समाज अपने जन्मकाल से ही ऐसे कुकृत्यों को नष्ट करने में अग्रसर है। दूसरे देश हितैषी भी इस भेद भाव को मिटाने में भागीरथ प्रयत्न कर रहे हैं; यह बात अब्राह्मणों के एकमात्र नेता राजा जी ने भी स्वीकार कर ली है। अब रही मनुस्मृति से भिन्न अन्य स्मृतियाँ। उनमें बहुत सा अंश वेद और मनु के आशय से विरुद्ध है, और वे ऐसे काल की रचना हैं जिस काल में भारत में घोर अन्धकार छाया हुआ था। ऐसी स्मृतियों की छाया अन्य सूत्र ग्रन्थों आदि पर भी पड़ी अतः वे भी इस जातिगत द्वेष से अछूते नहीं बच सके। बहुत से आक्षेपकर्त्ता वेदों में भी यह सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि ऋग्वादि भी शूद्रों को समानाधिकार नहीं देते—वे भी शूद्रों का नाश और उनसे घृणा करने की शिक्षा देते हैं। इसके लिये हम एक यजुर्वेद का मन्त्र प्रस्तुत करते हैं, पाठकगण उस पर ध्यान दें—"रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि। रुचं विश्येषु 'शूद्रेषु' मयिधेहि रुचारुचम्"। यजुः अध्याय १८ मन्त्र ४८।

इस वेद मंत्र में चारों वर्णों में रुचि का कितना सुन्दर आदेश है? ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रों में परस्पर रुचि हो, यह वेद भगवान् आज्ञा दे रहे हैं। क्या इतने स्पष्ट वेद मंत्र के होते हुए भी कोई कह सकता है कि वेद भगवान शूद्रों से घृणा करना बतलाते हैं?

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि दस्यु, दास, राक्षस, दानव, यातुधान, असुर, और दैत्य आदि शब्द वेद में किसी जाति विशेष के अर्थ नहीं हैं किन्तु जो चोर, डाकू, व्यभिचारी, मांस मदिरा सेवी और श्रेष्ठ पुरुषों को सब प्रकार से, उनके यज्ञादि में बाधा डाल कर, दुःख देने वाले हैं उनके नाम हैं। ये चोर डाकू वेद की दृष्टि में किसी विशेष समुदाय के विरोधी नहीं किन्तु राजा प्रजा—सारी मानव जाति के विरोधी हैं। इन सारी बातों को हम आगे सप्रमाण सिद्ध करेंगे।

पञ्चजन और निषाद कौन हैं ? यह भी आगे सप्रमाण बताया जायगा।

मनु ८।४१५ में यह बताया गया है कि दास (गुलाम) कितने प्रकार के होते हैं। इन प्रकारों में एक युद्ध में जीता हुआ भी है। तो क्या जो क्षत्री क्षत्री को युद्ध में जीतता है वह क्षत्री भी—जीता हुआ विजित शूद्र हो जाता है। इस श्लोक में शूद्र को दास नहीं कहा। श्लोक यह है :—

ध्वजा हृतो भक्त दासो गृहजः क्रीत दत्रिमौ। पैत्रिको दण्ड दासश्च सप्तैते दास योनयः।

इस श्लोक में वह कौन सा शब्द है जिसके ये अर्थ हों कि 'जिसको आर्यों ने बाहर से आकर जीत लिया हो वह दास हैं ? हम सभी तो दूसरों के जीते हुए हैं, तो क्या हम सब शूद्र अथवा दस्यु हैं ? श्लोक के अर्थ यह हैं :—

जीता हुआ, भोजन के लिये गुलामी करने वाला, दासी पुत्र, मोल लिया हुआ, दान में दिया हुआ, जो पहले से ही गुलाम चला आता हो, दण्ड से छूटने के लिये जिसने गुलामी स्वीकार की हो, ये सात तरह के गुलाम हैं। उपरोक्त अवस्था सब वर्णों की हो सकती है, अतः केवल शूद्र ही दास नहीं होता किन्तु ब्राह्मण क्षत्रियादि सभी हो सकते हैं।

The Indo-Aryan Races pp 2-3 में भी यही लिखा है कि—

"There are the seven kinds of slaves" यह नहीं लिखा कि "These are all shudras"

## क्या हम आर्य लोग विदेशी हैं ?

हम इस लेख माला के प्रथम लेख में बता ही चुके हैं कि भारतवर्ष में जो भी विदेशी आता है वह आर्यों में भेद भाव उत्पन्न करके अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। इस बात में यूरोप की कौमें अत्यन्त दक्ष हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार ईसाई मिशनरियों ने आर्य जाति में भेदोत्पन्न करने के लिये यह राग अलापना आरम्भ किया कि—भारतवर्ष के आदि निवासी ये अछूत हैं, और आर्यों ने बाहर से आकर इनको दास बनाया। यही बातें इन ईसाइयों ने अपने बनाये हुये इतिहासों में भी भर दीं जो कि भारतवर्ष में हिन्दू बच्चों को पढ़ाये गये और विचार घुटी के समान हमारे अबोध बच्चों को पिला दिये गये। हिष्ट्री में लिख दिया कि :—

"Shudras may be descendants of the non-Aryans, or the socalled Turanians race who were the dominant people in India."

अर्थात् शूद्र अनार्यों की सन्तान हैं अथवा सामयिक तूरानी नस्ल से हैं, जो कि भारत में विजित प्रजा थे। जिस

समय ऐसे २ भ्रष्ट विचारों को लेकर हमारे भारतीय युवक स्कूल और कालिजों से निकले तो, विशेषज्ञ न होने के कारण वे भी अपने पश्चिमी गुरुओं की भांति ठौर ठौर पर ऐसे ही बेतुके राग अलापने लगे। इन्हीं शिष्यों के कथनों के अवतरण और उद्धरण देकर भारतीय सन्तान में वैमनस्य की जड़ जमीं रहने देने का भरसक प्रयत्न हमारे आक्षेपकर्त्ता कर रहे हैं।

इन आक्षेपकर्त्ताओं को यह सुध नहीं कि विदेशी लोग जिस अन्य देश को जीतते हैं वहां के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पुरुष को अत्यन्त नीच सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। भरत जैसा भ्राता किसी विदेशी ने उत्पन्न नहीं किया। जब विधर्मियों ने भारत में भरत जी की महिमा सुनी तो उनके लिये असह्य हुई। उनके देशवासियों की प्रकृति भाई भरत की प्रकृति के विरुद्ध थी। अतः उन्होंने भरतजी को बदनाम करने में कोई कसर शेष नहीं रक्खी। वे लिखते हैं कि—

"The reluctance is improbable, it is contrary to human nature ; it may be, however, beigned to strengthen his claim to the throne in the absence of Rama."

Short History of India by J. Talboy Wheeler p, 37

अर्थात् "( भरत का ) पश्चात्ताप विश्वास योग्य नहीं है। यह मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध है। राम की अनुपस्थिति में भरत का राज्य के अधिकार को पुष्ट करने का बहाना था।" भरत का राजत्याग योरोपियनों की दृष्टि में, मानवी स्वभाव के विरुद्ध है। हाँ ठीक भी है; जिन्होंने राज्य के लोभ में बाप बेटों के रुधिर बहाये हों, जिस प्रजा ने राजा के रुधिर को चूमा हो, जहां पर क्रान्तिकारियों की उपज ककड़ी और खीरे की तरह हों, जहां पर वर्षों तक सिविल वार—गृह युद्ध राज्य के लिये चलते रहे हों भला उनकी रुधिर पिपासित खोपड़ी में यह बात कैसे समा सकती है कि कोई सौतेला छोटा भाई अपने बड़े भाई के लिये राज्य त्याग दे !! वे तो Might makes right जिसकी लाठी उसकी भैंस के अभ्यासी रहे हैं। यही योरोपियन लेखक श्रीरामचन्द्र जी के बनवास के समय महाराज दशरथ जी के शोक के विषय में लिखते हैं कि—

"The exaggerated accounts of the maharaja's sorrow over the exile of Rama give rise to the suspicion that his grief was all a sham." p. 31

अर्थात यह महाराज का अत्युक्तिपूर्ण शोक सन्देह में डालता है कि उसका ( दशरथ का ) यह शोक नितान्त ही

बहाना था ( या बनावट थी )। ये हैं उनके उद्गार जो राम के वनवास पर हमारे बालकों के लिये भारतवर्ष का इतिहास लिखते हैं !!! ये तो पशुबल को ही मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल समझते हैं। क्या हम इन लेखकों से भारतसंतान के लिये किसी सद्भावना की आशा कर सकते हैं कि जो यह लिखने तक को उतारू हो जायँ कि "डाह के कारण कौशल्या ने दशरथ को विष दे दिया होगा।" शिव ! शिव !! कहां भारतीय वैदिक सभ्यता और कहां पश्चिमी पशुबल ?

वे अपने गर्व में मैगास्थनीज़ के इस कथन पर तनक भी ध्यान नहीं देते कि "संपूर्ण भारतीय पूर्ण स्वतंत्र कहाँ हैं। उनमें कोई दास नहीं। भारतीयों के मित्र पड़ोसी Lakedeomonias लैकेडिओमोनियस, Helat हैलाट जातिवालों को दास बनाकर उनसे नीचे दरजे का काम कराते हैं; परन्तु भारतवासी अपने शत्रुओं से भी दास का व्यवहार नहीं करते। देखो—

Fragments of India, Magasthenes Fragment p. 26

मैगास्थनीज़ चन्द्रगुप्त के समय ३२१ वर्ष मसीह से पूर्व भारत में आया था। उस समय भारत की यह उपरोक्त अवस्था थी। उससे पूर्व और उत्तम थी।

संसार में यह कहावत विख्यात है कि "गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः" अर्थात् लोग एक दूसरे के पीछे बिना सोचे समझे चल देते हैं। असली तत्व को जाननेवाले बहुत कम होते हैं। यही अवस्था हमारे अंगरेजी पढ़े लिखों की हो गई। एक पश्चिमी गुरु ने जो अनाप शनाप बेढंगी बात कह दी उसी के पीछे दूसरे भी बिना सोचे समझे चल दिये। बस यारों का काम पूरा हो गया। सारा मस्तिष्क उस पश्चिमी गुरु के कथन की पुष्टि में ही खर्च कर डाला। परन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं जो अन्धे के पीछे अन्धे बनकर नहीं चले किन्तु अपनी विद्या और बुद्धि से भी काम लिया। वे महानुभाव यह नहीं कि, केवल भारतीय हों किन्तु पश्चिमीय भी हैं जिन्होंने "अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः" की कहावत को चरितार्थ नहीं किया। उन्होंने बड़ी गवेषणा और अन्वेषण के साथ यह सिद्ध किया है कि ये कोल भील और द्रविड़ आदि आदिम भारतवासी नहीं हैं। न यह सिद्धान्त ठीक है कि आर्यों ने कहीं बाहर से आकर इनको जीता और शूद्रादि नाम इनके धरे। यह विचार भी इनके अन्वेषण ने असिद्ध कर दिया कि सामयिक ब्राह्मणादि उच्च वर्णस्थ कहीं बाहर से आये थे। इन सब देशी और विदेशी महानुभावों के कथन आगामी अङ्कों में पाठकगण पढ़ सकेंगे।

# विधवा विवाह

[ अयोध्याप्रसाद बी० ए०, एल-एल० बी० ]

विधवाओं के अश्रुधार की नदियां बढ़ती जाती हैं।
डूबे डूबे अब भी सोचो भारी विपदा आती हैं॥

विचारो मनमें तुम एक बार।
है कैसा इन पर अत्याचार॥
दुधमुखी अल्प वयस सुकुमार।
नवीना प्रौढ़ा बिन आधार॥
मरा पति हुईं ये विधवा भार।
है जीवन इनका अपना भार॥

इनको यह दुर्दशा देख कर छाती फटती जाती है॥ १॥

मधुर मन मुग्धकरी मुसकान।
हुई दुख दर्द भरी मुसकान॥
कहां वह प्रेम भरी मुसकान।
मुदित मन मोदकरी मुसकान॥
हुई अब निरस निरी मुसकान।
रसीली रहस भरी मुसकान॥

चन्द्रहास की छटा छबीली अब वह कहां दिखाती है॥ २॥

हुआ पीला है ललित लिलार।
काम के सहतीं बज्र प्रहार॥
सिसकतीं रोतीं ढाहैं मार।
बिपत का नहीं है वारापार॥
बिरह की पीड़ा अति सुकुमार।
सहैं ये कैसे कौन प्रकार॥

शोक मूर्ति के घर में रहते कैसे निद्रा आती है॥ ३॥

बिना पति के ये रहैं उदास।
हुवा है सब विधि इनका नास॥

ये खावैं अथवा करैं उपास।
नहीं है इनको कोई आस ॥
न आती है कहुं प्रेम की बास।
घृणा अरु द्वेष से है सहवास ॥
कठिन समस्या हुई उपस्थित सब दुनिया निद्राती है ॥ ४ ॥
न देखा पति का मुख तक हाय !
हुईं ये विधवा कैसा न्याय ?
कहूँ बर बूढ़ा गले लगाय।
ब्याह का ढोंग रचाया जाय ॥
कहूँ बरजोरी ब्याह कराय।
दुःखमय जीवन दिया बनाय ॥
विधवाओं की दिन दिन इससे संख्या बढ़ती जाती है ॥५॥
ये रीति रिवाजों को धिक्कार।
ये सभा समाजों को धिक्कार ॥
ये नारी पुरुषों को धिक्कार।
ये ब्याह विवाहों को धिक्कार।
ये मत मन्तव्यों को धिक्कार।
ये नियम नीतियों को धिक्कार ॥
व्यभिचारी जिनके कारण ऋषि सन्तति होती जाती है ॥६॥
करो तुम बारम्बार विवाह।
न सोचा आगा पीछा आह ॥
रखो मरने तक इसकी चाह।
जो होगा होगा नहिं परवाह ॥
अभागिन करेगी कैसे निबाह।
जो लोगे तुम परलोक की राह ॥
इन मन मानी करतूती पर लाज को लज्जा आती है ॥७॥
हो तुम पढ़े लिखे बलवान।
तदपि कामातुर खोवत मान।

हों अबला ये मूर्ख नादान।
कहो ! किमि राखैं धर्म की आन॥
हो तुमको कुकरन की जब बान।
तो इनका पतिव्रत कठिन महान्॥
यह अदूरदर्शिता तुम्हारो अगनित पाप कराती है॥८॥

ये घर में रह कर करती पाप।
सहैं कैसे ये विरह की ताप॥
ये लुक छिपकर कर प्रेम प्रलाप।
लगावत कुल में अयश की छाप॥
छिपावन हित फिर अपना पाप।
ये शिशुवध करती अपने आप॥
पाप की ऐसी पराकाष्ठा और न कहूं दिखाती है॥९॥

छोड़ घर कहूँ भाग ये जाय।
नीच संग अपना जन्म नशाय॥
कबहुं बस हाट बाट में जाय।
बेच कर धर्म्म ये वृत्ति कमाय॥
जवानी भर ये पाप कमाय।
हो बूढ़ी बिन पूछे मर जाय॥
कुल मर्यादा जगत् प्रतिष्ठा सब यह विधि बह जाती है॥१०॥

क्रमशः
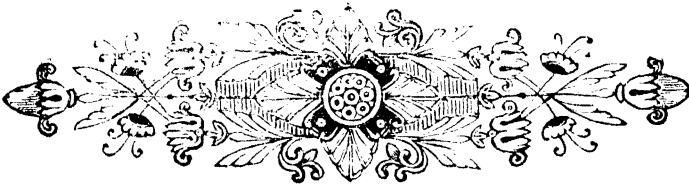
# ज़रथुश्त्री धर्म

श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०, एफ० आई० सी० एस०
सम्पादक विज्ञान

## महात्मा ज़रथुश्त्र

प्राचीनता की दृष्टि से वैदिक धर्म के पश्चात् ज़रथुश्त्री धर्म की गिनती है। इस धर्म का प्राचीन साहित्य अवस्ता भाषा में है। पर इसकी मूल पुस्तकें जिनका नाम गाथा है, भाषा में अवस्ता से कुछ भिन्न हैं, पर यह भिन्नता केवल उतनी ही है जितनी कि संस्कृत और वैदिक संस्कृत में है। भाषा की दृष्टि से भी हम वैदिक साहित्य और ज़रथुश्त्री साहित्य की तुलना कर सकते हैं—

| ज़रथुश्त्री साहित्य | वैदिक साहित्य |
|---|---|
| गाथाओं की भाषा | वैदिक संस्कृत |
| अवस्ता | लौकिक संस्कृत |
| पहलवी | प्राकृत |
| गुजराती | हिन्दी |

आर्य्य साहित्य आजकल हिन्दी में अधिक है और इसी प्रकार पारसी साहित्य देशीय भाषाओं में गुजराती में ही अधिक है। ज़रथुश्त्री धर्म के सम्बन्ध में अभी हिन्दी में कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है।

ज़रथुश्त्री धर्म के मूल प्रचारक महात्मा ज़रथुश्त्र थे। इनको पैग़म्बर समझा जाता है। वस्तुतः पैग़म्बरवाद की कल्पना सबसे पहले इसी धर्म में की गई है। वैदिक धर्म और बाद के पौराणिक धर्म में कहीं भी पैग़म्बरों की भावना की पुष्टि नहीं पायी जाती है। भारतवर्ष में जिस प्रकार अवतारवाद का प्रचार हुआ उसी प्रकार पश्चिमी एशिया के धर्मों ने पैग़म्बरवाद का प्रचार किया। अस्तु, महात्मा ज़रथुश्त्र को उनके अनुयायी पैग़म्बर अर्थात् विशेष कार्य्य के लिये ईश्वर के द्वारा भेजे गये व्यक्ति मानते हैं।

जिस प्रकार महात्मा ईसा के सम्बन्ध में बहुत सों के ये विचार हैं कि आप कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न थे, उसी प्रकार आधुनिक अनेक विद्वानों ने यह कहना आरम्भ कर दिया है कि महात्मा ज़रथुश्त्र भी एक कल्पित व्यक्ति हैं, न कि ऐतिहासिक। पर पारसी विद्वानों ने आन्तरिक और बाह्य साक्षियों द्वारा इस भ्रम को मिटाने का प्रयत्न किया है। अस्तु, महात्मा ज़रथुश्त्र ने पश्चिमी ईरान अथवा मीडिया के आज़रबएज़ान प्रदेश में जन्म लिया था। इनके जन्मकाल के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

ग्रीस के युदोक्सस अथवा अरस्तू से पूर्व ही इनका जन्म हुआ था। कुछ विद्वान् इन्हें ईसा से ६-७ सहस्र वर्ष पूर्व तक मानते हैं। वस्तुतः जिस प्रकार वैदिक-कालीन व्यक्तियों का समय निर्णय करना असंभव है उसी प्रकार जरथुश्त्री व्यक्तियों के विषय में भी कहा जा सकता है। जरथुश्त्र शब्द का यौगिक अर्थ (ज़रथ = पीला, उश्त्र = ऊँट) पीले ऊँट का स्वामी है।

महात्मा जरथुश्त्र के पिता का नाम पोरुशस्प था। आपके पूर्व दसवीं पीढ़ी में स्पीताम नामक एक व्यक्ति हुए थे जिनके नाम पर आपके वंश का नाम 'स्पीत्म' वंश पड़ा है। पीढ़ियों का क्रम निम्न प्रकार था।

| | |
|---|---|
| १ स्पीताम | ६ हएचदस्प |
| २ हर्दार | ७ उर्वदस्प |
| ३ हर्दश्न | ८ पेतेरस्प |
| ४ पइतरस्प | ९ पोरुशस्प |
| ५ चख़शनुश | १० जरथुश्त्र |

अवस्ता में आपकी माता का उल्लेख नहीं आया है पर दीनकर्द नामक ग्रन्थ में इनकी माता का नाम दुग्दो लिखा है। इनके दो बड़े और दो छोटे भाई थे। बड़े भाइयों के नाम रतुश्तर और रन्गुश्तर तथा छोटे भाइयों के नाम नोतरीगा और और नीवातुश थे। जरथुश्त्र की पत्नी हवोवी थी, और इनके तीन पुत्र इस-द्वास्तर, उर्वतदनर और खोरशेदचेहेर हुए। फ्रेनी, थ्रीती और पोरुचीश्ती नामक इनकी तीन कन्यायें भी थीं।

पारसियों की पुस्तकों में महात्मा जरथुश्त्र के जन्म के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की विचित्र कथायें लिखी हुई हैं। जिस प्रकार महात्मा कृष्ण के जन्म के समय विशेष प्रकार की वृष्टि, बिजली आदि का उल्लेख आता है उसी प्रकार इनके जन्म के समय भी पृथ्वी हिलने लगी थी और बादल गरज रहे थे जिनमें बिजली कड़क रही थी, घनघोर वर्षा भी हो जाती थी। लोग समझ रहे थे कि न जाने क्या प्रलय होने वाली है। ऐसे समय में महात्मा ने जन्म लिया!

गाथा में लिखा हुआ है कि गो (पृथ्वी) अहुरमज़्द के पास जाकर विलाप करने लगी थी कि उसके ऊपर अत्याचारियों का भार बढ़ता जा रहा है और उसका जीवन संकट में है। इस संकट को मिटाने और लोगों को धर्म का सच्चा मार्ग (अष मार्ग) दिखाने के लिये अहुरमज़्द ने यह काम जरथुश्त्र को सौंपा था। एक बात अवश्य है कि जिस प्रकार मुहम्मद या ईसा को ईश्वर का ख़ास पुत्र समझा जाता है, उस प्रकार जरथुश्त्र अहुरमज़्द के कोई विशेष पुत्र न थे, यद्यपि अहुरमज़्द के स्वर्गीय राज्य के वे विशेष योग्य व्यक्ति अवश्य थे।

सात वर्ष की आयु में इन्हें इनके पिता ने 'बुर्ज़ीन कुरुश' नामक योग्य गुरु को शिक्षा के लिये नियुक्त किया। कोई कोई इस गुरु का नाम एगोनासीस बताते हैं। ज़रथुश्त्र को पिता की संपत्ति से आरम्भ से ही मोह न था। पंद्रह वर्ष की अवस्था में इसने प्रण-स्वरूप अपनी कमर से एक कमर-बंध बाधा और प्रतिज्ञा की कि अपना समस्त जीवन दूसरों के संकट दूर करने में व्यतीत करेगा।

जिस समय यह युवक ही था कि इसके देश में घोर दुर्भिक्ष पड़ा, और अन्न घास न पाने के कारण पशु बिलख बिलख कर मरने लगे। उस समय उसने पीड़ितों की बड़ी ही रक्षा की। २० वर्ष की आयु के पश्चात् वह उशीदरेन पहाड़ के ऊपर जाकर एकान्त वास करने लगा और वहाँ शान्त तपस्या में १० वर्ष व्यतीत किये। इस एकान्तवास के समय वह शरीर रक्षा निमित्त बहुत ही थोड़ा भोजन ( पनीर का ) करता था। यहां पहाड़ पर वह अनेक प्रकार का चिन्तन करता, कभी हाथ ऊपर उठाकर तारों से बातचीत करता और कभी नीचे बहने वाली सरिताओं से प्रश्न पूछता। वह अहुरमज़्द के ध्यान में मग्न रहता और यह विचारा करता कि सृष्टि में पाप की रचना किस प्रकार हुई। वह ईश्वर और सृष्टि के सम्बन्ध में न जाने क्या क्या सोचता। उसे ऐसा प्रतीत होता कि ईश्वर स्वयं उसके प्रश्नों का उत्तर दे रहा है।

पहाड़ से उतर कर महात्मा ज़रथुश्त्र ने अपने देश में भ्रमण आरम्भ किया और वहां की अवस्था को भली प्रकार देखा। इसके पश्चात् वह शाह गुश्तास्प के दरबार में पहुंचा।

ऐसा कहा जाता है कि उस पहाड़ के ऊपर महात्मा ज़रथुश्त्र को सात अमेशास्पंदों ( फ़िरश्तों ) के दर्शन हुए। ये फ़रिश्ते अहुरमज़्द की भिन्न भिन्न शक्तियों के ही नाम हैं। इन अमेशास्पंदों के साक्षात्कार का भाव यह है कि ज़रथुश्त्र ने ईश्वर की भिन्न भिन्न शक्तियों को भली प्रकार अनुभव किया।

महात्मा ज़रथुस्त्र का पहला अनुयायी उसी का एक सम्बन्धी मेध्योमाह था। इसके पश्चात राजा गुश्तास्प और रानी हुतोशी ने ज़रथुश्त्री धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार ज़रथुश्त्र को जब एक राज्य-वंश का आश्रय मिल गया तब वह अपना प्रचार और अधिक संलग्नता और सफलता से करने लगा। राजा गुश्तास्प का भाई ज़रीर, उसके पुत्र अस्फन्दयार और पेशोतन, उसका मंत्री जामास्प आदि सब उसके शिष्य हो गये थे।

इसके पश्चात् ज़रथुश्त्री धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। एक समय की बात है कि राजा गुश्तास्प के साम्राज्य

पर तूरानी बादशाह अर्जास्प ने आक्रमण कर दिया। थोड़े समय तो युद्ध बराबर रहा पर बाद को अर्जास्प ने एक आकस्मिक हमला कर दिया। इस हमले में ही, कहा जाता है कि महात्मा ज़रथुश्त्र भी किसी अनजान व्यक्ति के हाथ से मारा गया। कुछ लोग इसके घातक का नाम तुरबरातुर बताते हैं। दीनकर्द ग्रन्थ में इसका नाम बरातुरत है। मृत्यु के समय महात्मा ज़रथुश्त्र की आयु ७७ वर्ष ४० दिन बताई जाती है (मृत्यु अर्दीबेहेश्त मास के खोर्शेद दिन को हुई)।

## ज़रथुश्त्र के उपदेश तथा गाथा ग्रन्थ

महात्मा ज़रथुश्त्र ने मज़्दयस्नियन धर्म की स्थापना की। मज़्दयस्नियन का तात्पर्य उस धर्म से है जो अहुरमज़्द का उपासक है। अहुरमज़्द परमात्मा का नाम है। यह कहना कठिन है कि ज़रथुश्त्र ने स्वयं कोई धार्मिक पुस्तक लिखी थी या नहीं। पर उनके उपदेशों का जो संग्रह आजकल प्राप्त है उसका नाम गाथा है। एक पहलवी ग्रन्थ में लिखा है कि महात्मा ज़रथुश्त्र ने १२०० परगरद (सूक्त) की अवस्ता पुस्तक की रचना की थी। हेर्मीपस नामक यूनानी लेखक का कहना है कि उसने २० लाख पंक्तियां लिखी थीं। ज़फर अबतरी नामक अरबी लेखक के कथनानुसार १२०० चर्मपत्रों से युक्त एक अवस्ता ग्रन्थ ज़रथुश्त्र ने लिखा था। इन सब बातों की सत्यता जांचना कठिन है।

पारसी धर्म के अन्दर गाथाओं का उसी प्रकार सम्मान है जिस प्रकार आर्य्य धर्म में वेदों का। गाथायें बहुत छोटी छोटी पुस्तकें हैं,—इतनी बड़ी समझनी चाहिये जितनी कि उपनिषदें। ये सब पद्यबद्ध हैं, जिनकी भाषा अत्यन्त ललित और काव्य की दृष्टि से परमोत्कृष्ट है।

गाथायें पांच हैं। अहुनवद गाथा, उश्तवद गाथा, स्पेन्तोमद गाथा, वोहुक्षत्र गाथा और वहिश्तोइश्त गाथा। गाथा शब्द का वस्तुतः वही अर्थ है जो गीता का है, अर्थात् गाकर पढ़ी जाने वाली पुस्तक गाथा है। महात्मा ज़रथुश्त्र ने अपने शिष्यों को ये गाथायें लिखायीं थीं ऐसी किम्वदन्ती है। इन गाथाओं में भिन्न भिन्न अध्याय हैं जिन्हें 'हा' कहते हैं।

अहुनवद गाथा में ७ अध्याय (हा २८-३४) हैं जिनमें क्रमशः ११,११,११, २२,१७,१५ और १६ इस प्रकार कुल १०३ फ़करे या मंत्र हैं।

उश्तवद गाथा में ४ अध्याय (हा ४३-४६) हैं जिनमें क्रमशः १७,२१,१२ और २०, इस प्रकार कुल ७० फ़करे हैं।

स्पेन्तोमद गाथा में ४ अध्याय (हा ४७-५०) हैं जिनमें क्रमशः ७,१२,१२ और ११, इस प्रकार कुल ४४ फ़करे हैं।

वोहुक्षत्र गाथा में १ अध्याय ( हा ५१ ) है जिसमें २३ मन्त्र हैं।

वहिश्तोइश्त गाथा में भी १ अध्याय ( हा ५३ ) है जिसमें १० मंत्र हैं। यहां हम इन गाथाओं का कुछ सूक्ष्म विवरण देंगे क्योंकि जरथुश्त्री धर्म के ये सबसे पवित्र वचन हैं।

## अहुनवद गाथा

इस गाथा का नाम अहुनवद इसलिये है कि इसका छन्द अहुनवर है। गायत्री मंत्र को जिस प्रकार गायत्री इसीलिये कहा जाता है कि वह गायत्री छन्द में है, इसी प्रकार इसे भी समझना चाहिये। इस गाथा में यह उल्लेख है कि सम्पूर्ण जगत की पीड़ित आत्मा ( गेउश उर्वन ) अहुरमज्द के पास पहुंची और उनसे विनय की कि हमारे दुःखों को किसी प्रकार दूर कीजिये, कोई ऐसा व्यक्ति भेजिये जिससे संसार का अधर्म और अत्याचार मिट जाय। इस काम के लिये जरथुश्त्र नियुक्त किया जाता है। इस गाथाओं में जरथुश्त्र अहुरमज्द और उसके गुणों की भक्तिपूर्ण स्तुति करता है और प्रार्थना करता है कि उसको ऐसी योग्यता, क्षमता और सामर्थ्य प्रदान की जाय जिससे वह अपने कर्त्तव्य में सफल हो सके। वह यह भी प्रार्थना करता है कि उसे शैतान ( अंग्रमइन्यू ) से बचाया जाय। सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग की प्रतिज्ञा करता है।

## उश्तवद गाथा

जिस प्रकार ईश और केन उपनिषद का ईश और केन नाम इसलिये पड़ा है कि इनके प्रथम शब्द ईश और केन हैं इसी प्रकार उश्तवद गाथा का नाम उश्तवद इसलिये है कि इसका पहला शब्द उश्ता है। इस गाथा की पहली पंक्तियां इस प्रकार आरम्भ होती हैं कि 'वही मनुष्य सुखी है जो दूसरों को सुख पहुंचाता है।'

इसमें इसका उल्लेख किया गया है कि अहुरमज्द ही संसार का आश्रय है। संसार के सम्पूर्ण कार्य्य उसी के नियम के अनुसार चल रहे हैं। इसके अन्तिम अध्याय में जरथुश्त्र के ऐतिहासिक व्यक्ति होने की आन्तरिक साक्षी मिलती है जिससे इसका विशेष महत्व है।

## स्पेन्तोमद गाथा

इस गाथा का पहला फ़करा स्पेन्तामइन्यु से आरम्भ होता है अतः इसका नाम स्पेन्तोमद पड़ा है। इस गाथा में पवित्रता का उपदेश किया गया है। स्पेन्तामइन्यु पवित्रता का प्रतिनिधि है। अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना का विवरण और उसके लिये अहुरमज्द से प्रार्थना की गई है।

## वोहुक्षत्र गाथा

इस गाथा का प्रारम्भ वोहूक्षत्रेम शब्द से होता है। अतः इसका नाम वोहुक्षत्र पड़ा है। इसमें अधर्मियों को दण्ड और धर्मात्माओं को सुख प्राप्त होने का विवरण है।

## वहिश्तोइश्त गाथा

इस गाथा का पहला शब्द वहिश्तो· इश्तिशी है जिस पर इसका नाम पड़ा है। इनमें महात्मा ज़रथुश्त्र के पवित्र जीवन की ओर संकेत है और उसके जीवन के अनुकरण का आदेश किया गया है।

---

# समालोचना

वैदिक विनय ( प्रथम खंड ) :—ले० पं० देवशर्म्मा 'अभय' विद्यालङ्कार। प्रकाशक गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी, जिला सहारनपुर। गाढ़े की जिल्द २) सादी १।) पृष्ठ संख्या ३२८। छपाई तथा कागज़ अति उत्तम।

स्वाध्याय मंजरी का यह तृतीय पुष्प है। श्रद्धानन्द स्मारक निधि के सभासदों को गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी की ओर से यह पुस्तक भेंट की गई है। गत वर्ष "ब्राह्मण की गौ" नामक एक अति उत्तम मननशील ग्रन्थ जनता के सामने प्रस्तुत किया गया था। इस वर्ष "वैदिक-विनय" एक अति उत्तम ग्रन्थ रचना गुरुकुल के एक विद्वान् स्नातक ने की है।

पुस्तक निर्माण में एक और विशेषता है। कानपुर के जेल में रह कर श्री पं० देवशर्म्मा ने इस ग्रन्थ को लिखना आरम्भ किया था और इसका अधिकाँश भाग जेल के अन्दर ही लिखा गया था।

पुस्तक तीन खण्डों में होगी। प्रथम खण्ड छप कर प्रकाशित हो गया है। इस पुस्तक में चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ चार महीने के लिये वैदिक प्रार्थनायें छांट कर रख दी गई। एक दिन के लिये एक प्रार्थना नियुक्त है। इस प्रकार से प्रति-दिन के स्वाध्याय के लिये एक मंत्र छाँट कर रख दिया गया है। पहले मन्त्र दिया गया है, उसके बाद उसका भाष्य तथा अन्त में शब्दार्थ दे दिया है।

चैत्र के लिये ३० मन्त्र
वैशाख के लिये ३१
ज्येष्ठ के लिये ३१
आषाढ़ के लिये २२

प्रत्येक मास के आरम्भ में व्यायाम की एक विधि लिख दी है। इससे पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ गई है। विद्वान् लेखक ने पुस्तक के आरम्भ में स्वाध्याय की विधि चार पृष्ठ लिख दी है।

यह पुस्तक आर्य-समाज को गौरवन्वित करेगी। स्वाध्याय की जैसी सामग्री इस पुस्तक में है वैसी और किसी में हमें देखने को नहीं मिली। विद्वान् लेखक को हम बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि उनके द्वारा ऐसे ही उत्तम ग्रन्थों की वृद्धि होती रहेगी।

---

प्रेषक—श्री रामलखनसिंह, ग्राम-म्योहर

कुछ दिनों से मैं सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय कर रहा हूँ। इस पुस्तक में मुझे थोड़ी बहुत शंकायें हुई हैं। इन शंकाओं को दूर करने के लिये अपनी अल्प बुद्धि अनुसार पहिले मैंने स्वयं प्रयत्न किया। जिनमें से कुछ ऐसी शंकायें हैं जिनके समाधान करने में मैं असमर्थ रहा। यद्यपि सत्यार्थप्रकाश को मैं आद्योपान्त मानता हूं तथापि जो शंकायें मेरे मन में उत्पन्न होती है उनके निवृत्यार्थ किसी आर्य्य विद्वान् से प्रार्थना करना भी अपना कर्त्तव्य समझता हूं। उक्त प्रयोजन से अपने इस टूटे फूटे लेख को मैं आपके पास भेजने का साहस कर रहा हूँ। यदि आप अपने "वेदोदय" नामक पत्र में इन शंकाओं पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे तो मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँगा।

[ १ ]

शंका

"ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझको सबसे बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जांय इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश करदे? जो कोई कहे कि जिसका प्रेम अधिक हो उसकी प्रार्थना सफल हो जावे तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम न्यून हो उसके शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये।" सत्यार्थ प्रकाश (२१ वीं बार) पृष्ठ ११७।

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्वतं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्वयं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥ यजु० अ० १। मं० ८

पं० जयदेव जी शर्मा कृत भाष्य :—

हे राजन्! वीर पुरुष! तथा हे परमात्मन्! तू समस्त शत्रुओं का विनाशक एवम् शकट के धुरा के समान प्रजा के भार को उठाने में समर्थ है। तू हिंसा करने हारे को विनाश कर और उसको मार, दंड दे जो हमको वध करता है। और उसको नाश कर जिसको हम विनाश करते हैं। हे वीर पुरुष तथा हे परमात्मन्! देव विद्वान् पुरुषों को सबसे

उत्तम, वहन करनेवाला, उनका भार शकट के समान अपने ऊपर उठाने वाला, सबका सर्वोत्तम पालन करने हारा, सब को सर्वोत्कृष्ट प्रेम करनेवाला, विद्वान पुरुषों को सर्वोत्तम उपदेश करने हारा, सबको प्रेम से अपने प्रति बुलानेहारा है। हम तेरी नित्य उपासना करें।

उक्त पं० जी के भाष्य से निम्न-लिखित बातें स्पष्ट होती हैं :—

(१) जो हमारा वध करे उसको तू मार दंड दे।

(२) जिसको हम विनाश करते हैं उसको तू नाश कर।

स्वामी जी का कथन है कि हे पर-मात्मा हमारे शत्रुओं का नाशकर इत्यादि प्रार्थनायें व्यर्थ हैं और न इसको ईश्वर स्वीकार ही करता है वेद में यह प्रार्थना करने का उपदेश है "कि धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः।" अब स्वामी जी तथा वेद वाक्यों की कैसे संगति मिलाई जावे ? तथा किस वाक्य को मानें ?

## समाधान

श्री स्वामी जी महाराज का सत्यार्थ प्रकाश का कथन और वेदमन्त्र का अर्थ भिन्न २ प्रसंगों से सम्बन्ध रखते हैं इस-लिये परस्पर विरुद्ध नहीं। स्वामी जी उस प्रथा का खण्डन करते हैं जिसमें मारन, मोहन, उच्चाटन आदि जादू टोने की क्रियाओं द्वारा ईश्वर से प्रार्थना की जाती है कि शत्रु का नाश कर दे। वेद मन्त्र उन क्षत्रियों से सम्बन्ध रखता है जो अपने शत्रुओं का नाश करने के लिये युद्ध में जाते हैं और अपने इस कार्य्य में ईश्वर की सहायता के याचक होते हैं। जो धर्म युक्त कार्य हैं उनके लिये उद्योग और उस उद्योग की सफलता के लिये ईश्वर से सहायता मांगना बुरा नहीं।

[ २ ]

## शंका

"९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल भेज दें।" स० प्र० पृ० १९॥

स्वामी जी जन्म से किसी पुरुष का ब्राह्मण क्षत्रियादि कोई वर्ण नहीं मानते तब क्यों ऐसा कहते हैं कि शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना ही विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें। क्योंकि जन्म से तो सभी मनुष्य शूद्र होते हैं। स्वामी जी स० प्र० पृ० ५४ में लिखते हैं, "जैसा मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्य जाति

उत्तम ब्राह्मण कहाता है।" श्री स्वामी जी के कथनानुसार यदि शूद्र गुरुकुल में जाकर पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त हो जाय तो वह अवश्य ब्राह्मण वर्ण में गिना जाना चाहिये और बिना उपनयन संस्कार के किसी मनुष्य की द्विजाति में संज्ञा नहीं हो सकती तो फिर उसका उपनयन संस्कार कब होगा ?

## समाधान

शूद्र अपनी सन्तान का यज्ञोपवीत घर में नहीं करता। हां गुरुकुल में परीक्षा लेने पर अधिकारी सिद्ध हो तो उसका यज्ञोपवीत वहां हो सकता है। द्विजों की सन्तान से स्वभावतः आशा रक्खी जाती है कि उनमें विद्योपार्जन का सामर्थ्य होगा। शूद्र की सन्तान के लिये परीक्षा की आवश्यकता होगी। शूद्र की घर की परिस्थिति ऐसी नहीं होती कि घर में यज्ञोपवीत हो सके। परन्तु आगे चलकर इस परिस्थिति के प्रभाव को बदला जा सकता है।

[ ३ ]

## शंका

"द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्यकुल अर्थात् अपनी २ पाठशाला में भेज दें।" स० प्र० पृ० २१ ॥

यह बतलाने की कृपा करें कि कन्याओं का यथायोग्य संस्कार कौन सा है।

## समाधान

यहाँ केवल वाक्य के पेचीदा हो जाने से सन्देह हो जाता है। यथायोग्य संस्कार से तात्पर्य 'यज्ञोपवीत' का ही है। इसके अतिरिक्त और कोई संस्कार अभीष्ट नहीं।

[ ४ ]

## शंका

"जो कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करे।" स० प्र० पृ० २६ ॥

क्या जो कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र न हो तो उसको न पढ़ाया जाय ? बहुत सम्भव है कि वह विद्या प्राप्त करने पर शुभ लक्षणयुक्त हो जाय ? तो क्या फिर इस उत्तम गुणों से अलंकृत करनेवाले मार्ग से उसे वञ्चित रक्खा जाय ? वेद तो यह कहता है कि:—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्रायचार्याय च स्वाय चारणाय।

यजु० अ० २६। मं० २॥

पर स्वामी जी सुश्रुत से यह प्रमाण देते हैं कि शूद्रमपि कुलगुण सम्पन्नं मन्त्र वर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ॥

इन दोनों में से कौन सी बात मानी जाय ?

### समाधान

यहाँ स्वामी जी ने अपना मत नहीं दिया किन्तु अन्य आचार्य के संस्कृत वाक्य का अनुवाद कर दिया। इस में तो सन्देह ही नहीं कि भारतवर्ष में एक समय अवश्य ऐसा हो गया है जब शूद्रों के लिये वेद पढ़ना वर्जित था। परन्तु स्वामी जी का निज मत यह है कि वेद सब के लिये है। यह मन्त्र अन्यत्र स्पष्ट रीति से दिया हुआ है।

[ ५ ]

### शंका

"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ मनु० २।१६८॥

जो वेद को न पढ़ के अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्र भाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥"
॥ स० प्र० पृ० ३०॥

शंका—जो जैसा करता है वह वैसा पाता है इस बात को सभी धर्म और मत मतान्तर वाले मानते हैं। यदि मैं कोई कुकर्म करता हूं तो उसका फल मुझको मिलना चाहिये न कि मेरे साथ कोई अन्य भी पोसा जाय। यदि कोई पुरुष वेदाध्ययन नहीं करता तो यथार्थ में उसको शूद्र भाव को प्राप्त होना चाहिये पर यह कहां का न्याय है कि उसके साथ उसके पुत्र पौत्र भी शूद्र हो जावें और यह संभव भी नहीं हो सकता क्योंकि बहुत संभव है कि उसके पुत्र या पौत्र अद्वितीय वेद के पंडित हों॥

### समाधान

यह भी मनु के एक श्लोक का अनुवाद मात्र है। स्वामी जी का मत नहीं। हां इसको एक प्रकार से मान सकते हैं। अर्थात् जब एक पुरुष शूद्र हो गया तो वह अपने कर्मों का जो सिलसिला जारी रखता वह टूट जायगा और साधारण तया उसके पुत्र पौत्र शूद्र ही होंगे। अर्थात् उन को द्विजत्व की शिक्षा न मिलेगी। हां यदि वह अधिक परिश्रम करें तो परिस्थिति के प्रतिकूल होते हुये भी फिर द्विज बन सकते हैं। यह तो मानना पड़ेगा कि ब्राह्मण के पुत्र पौत्र को ब्राह्मण बनने के लिये जो सुविधायें हैं वह शूद्र के पुत्र पौत्र का नहीं। असाधारण परिश्रम अवश्य शूद्र के लड़के को ब्राह्मण बना सकता है।

[ ६ ]

### शङ्का

नक्षत्र वृक्ष नदी अन्त्य पर्वत पक्षी सर्प प्रेष्य और भीषण नामवाली कन्याओं के साथ विवाह न करना चाहिये।

उक्त नामों वाली कन्याओं से विवाह न होना चाहिये, यह समझ में नहीं आता कि क्यों न होना चाहिये। यदि इन नामों में से कोई नाम वाली कन्या विदुषी तथा सुशीला है तो क्या केवल नाम मात्र से ही उसका ब्याह न होना चाहिये ?

### समाधान

यह भी मनु के एक श्लोक का अनुवाद मात्र है। सब दशाओं में तो यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। किसी स्त्री का विवाह केवल उसके नाम के कारण न हो। परन्तु इसका एक लाभ अवश्य होगा। अर्थात् कुत्सित नाम रखने की प्रथा न रहेगी। और स्त्रियों के नाम तो बदले ही जा सकते हैं। कोई स्त्री यह क्यों ज़िद करे कि मैं अपना भीषण नाम न छोड़ूँगी तब भी मेरा विवाह हो ही जाय। अच्छे और शिक्षाप्रद नाम रखने का विशेष लाभ है। वह पुकारने में अच्छा लगता है। उससे कहने और सुननेवालों के मन पर अच्छा संस्कार पड़ता है। यदि कोई विदुषी और सुशीला है तो वह अच्छा नाम ही क्यों न रखले ? समस्त समस्या हल हो जाय।

[ ७ ]

### शङ्का

"प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत शिखादि चिह्न को छोड़... संन्यासी हो जावे।" स० प्र० पृ० ८१॥

हवन वायु के शुद्ध करने के निमित्त किया जाता है। उसमें शिखादि छोड़ने से तो दुर्गंधि उत्पन्न होगी। तो फिर हवन के तात्पर्य के विरुद्ध स्वामी जी यह क्यों आज्ञा देते हैं ?

### समाधान

"उसमें यज्ञोपवीत शिखादि चिह्नों को छोड़ने का अर्थ यह है कि यज्ञ के समय इन चिह्नों को छोड़ दो इसका यह तात्पर्य नहीं कि हवन कुण्ड में इनको जला दे।

[ ८ ]

### शङ्का

"पुरोहित और ऋत्विज का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और यज्ञेष्टि आदि सब राज घर के कर्म किया करें। आप सर्वदा राज कार्य में तत्पर रहें अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना।" स० प्र० पृ० ९५॥

क्या राजा को राजकार्य में प्रवृत्त रहने के अतिरिक्त अग्निहोत्र सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म आवश्यक नहीं है ? श्री स्वामी जी स० प्र० पृ० ६२ में लिखते हैं, "और जो ये दोनों काम सायं और प्रातः काल में न करे उसको

सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देवें अर्थात् उसे शूद्रवत् समझें।" क्या स्वामी जी के ये दोनों लेख परस्पर विरुद्ध नहीं हैं? यदि नहीं हैं तो इसकी एक दूसरे से कैसे संगति मिलाई जाय? क्या वह राजा जो सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म नहीं करता शूद्रवत् द्विजों के कर्म से बहिष्काय नहीं हैं? कौन सी बात मानी जावे?

## समाधान

इसका अर्थ यह नहीं कि सन्ध्योपासनादि कर्म कर्तव्य नहीं केवल तात्पर्य यह है कि राजा को ऐसा नहीं करना चाहिये कि पूजा पाठ में लगा रहे और प्रबन्ध छोड़ दे। राज्य का प्रबन्ध अन्य सब बातों की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। कल्पना कीजिये कि सन्ध्योपासन के लिये जाने के समय ही राजा पर शत्रु ने आक्रमण कर दिया। तो उस समय आक्रमण का प्रतीकार करे, सन्ध्या छोड़ दे। आशय को लेना चाहिये केवल शब्दों पर नहीं जाना चाहिये।

[ ९ ]

## शङ्का

मन को "नाभिप्रदेश में वा हृदय, नेत्र, कण्ठ, शिखा अथवा पीठ के मध्यहाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवें।" स० प्र० पृ० ११८॥

जब श्री स्वामी जी शिखादि में मन लगाने का परामर्श देते हैं तो क्या हम मूर्ती में मन लगाने से कोई अधर्म करते हैं? जैसे शिखादि में मन लगाना वैसे मूर्ती में मन लगाना, कोई विशेष अन्तर नहीं है। शिखा भी जड़ है और मूर्ती भी जड़ है। तो फिर स्वामी जी मूर्ती पूजा का क्यों खडन करते हैं?

## समाधान

मन का प्राण से सम्बन्ध है। जहाँ प्राण रुकेगा वहीं मन भी रुक जायगा। अतः मन को स्थिर करने से तात्पर्य यह है कि अमुक अमुक भाग में प्राणों को रोकना चाहिये। प्राणों को रोकने से मन भी स्थिर हो ही जायगा। यह बात मूर्ति में संभव नहीं। शिखा का अर्थ है शिखा का मूल स्थान न कि बाल।

[ १० ]

## शङ्का

"जब महा प्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादिक्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है अग्न्यादि क्रम से, और विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल क्रम से सृष्टि होती है अर्थात् जिस जिस प्रलय में जहां जहां तक प्रलय होता है, वहां वहां से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।" स० प्र० पृ० १४२॥

स्वामी जी लिखते हैं कि परमेश्वर के काम बिना भूल चूक के होने से सदा एक से रहते हैं (स० प्र० पृ० ४०) पर ऊपर का लेख तो उसके सर्वथा विरुद्ध है। कभी कहीं तक प्रलय होता है कभी कहीं तक, कभी कहीं से सृष्टि होती है कभी कहीं से। क्या यह ईश्वरीय नियम का बदलना नहीं है? मेरी समझ में तो यह है कि यदि प्रकृति के किसी भी कार्य अस्तित्व है तो वह प्रलय ही नहीं है।

### समाधान

इसमें भूल चूक का प्रश्न नहीं उठता। हमारे शरीर में भी प्रलय सदा होती रही है। कभी किसी अङ्ग की कभी किसी अङ्ग की। बच्चों के दूध के दांत गिर कर फिर निकल आते हैं। बुड्ढों के नहीं निकलते। अर्थात् शरीर में भी सम्पूर्ण मृत्यु और आंशिक मृत्यु हुआ करती है। इसी प्रकार कभी प्रलय और कभी महा प्रलय।

[ ११ ]

### शङ्का

"जैसे राई के सामने पहाड़ घूमें तो बहुत देर लगती है और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता।"

स० प्र० पृ० १४७॥

यह दृष्टान्त मेरी समझ में नहीं आता कृपया और स्पष्ट कीजिये।

### समाधान

कहना यह है कि छोटी वस्तु को बड़ी के चारों ओर घुमाना तो बुद्धिमत्ता है और बड़ी चीज़ को छोटी के चारों ओर घुमाना बुद्धिमत्ता नहीं। राई तो पहाड़ के चारों ओर घूम सकती है परन्तु पहाड़ राई के चारों ओर नहीं घूम सकता। जब सूरज बड़ा है और पृथ्वी को ही सूरज के गिर्द घूमना चाहिये, न कि सूरज को पृथ्वी के गिर्द।

[ १२ ]

### शंका

"(प्रश्न) सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु है और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं? (उत्तर) ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं।"

स० प्र० पृ० १४८॥

सूर्य तो आग का गोला हैं, इसमें मनुष्यादि सृष्टि कैसे हो सकती है।

### समाधान

यों तो पृथ्वी भी आग का गोला है। परन्तु जिस प्रकार पृथ्वी के गर्म और ठंड दोनों प्रदेशों में भिन्न भिन्न प्रकृति के प्राणी रहते हैं। उसी प्रकार सूरज में रहने वालों की प्रकृति पृथ्वी के प्राणियों की प्रकृति से भिन्न होगी।

[ १३ ]

### शंका

"बिना अपराध शाप भी नहीं लग सकता।" ॥ स० प्र० पृ० २१७॥

क्या थोड़े अपराध पर बहुत बड़ा शाप लग सकता है ? क्या शाप का सिद्धान्त ठीक है ? यदि किसी ने अपराध किया है तो ईश्वर उसे अवश्य ही दण्ड देगा। तब क्या किसी के शाप से ईश्वर उसे उसके अपराध से अधिक दण्ड दे देगा? यदि ऐसा करे तो अन्यायी हो जाय।

### समाधान

शाप का केवल यह अर्थ है कि दूसरे का बुरा चाहना! केवल हमारे बुरा चाहने से किसी का बुरा नहीं हो जाता। यदि हमने शाप दिया और उसके भी ऐसे खोटे कर्म थे कि जिनके अनुसार उसको बुरा फल मिलता तो अकस्मात् हमारा शाप ठीक हो जायगा। अर्थात् यद्यपि उसको बुरा फल उसके ही अपराध के कारण मिलेगा और उस फल में हमारे शाप के कारण किंचित् भी घट बढ़ नहीं सकता तथापि इन दोनों घटनाओं का आकस्मिक संयोग हो सकता है बस इतना ही, अधिक नहीं।

[ १४ ]

### शंका

[ प्रेषक—सुन्दरसिंह राठौर, बसरा ]

संसार भर के मनुष्यों की कुल संख्या करीब १॥ अर्ब है। चौपाये, पक्षी, कीड़े, मकोड़े, चींटियां, तथा बरसाती और खलिहानी कीड़े मनुष्यों से करोड़ों गुना अधिक होंगे। दूसरी ओर मुट्ठी भर वायु को लो उसमें असंख्य प्राणी हैं। फिर समस्त संसार की वायु पर विचार करो। एक बूँद रक्त में देखो अगण्य जीव हैं फिर सब शरीर के रक्त और सारी दुनियां के मनुष्यों तथा प्राणी मात्र के रक्त का अन्दाज़ा लगाओ। कीचड़ या पानी की एक छोटी सी बूंद में देखो कितनी बस्तियां हैं फिर सारी सृष्टि के तालाबों, नदियों तथा बड़े बड़े महासागरों में गोते लगाओ क्या कोई ऐसा गणित है जिससे वहां के जीवों की गणना हो सके। एक गज़ ज़मीन में देखो कितनी संख्या में वृक्ष, वनस्पति तथा घास है फिर समस्त भूमंडल के अचल जीवों पर मस्तिष्क भिड़ाओ। (जे० सी० बोस की तहक़ीक़ात पत्थरों तथा दूसरी धातुओं में जीवन की विद्यमानता छोड़ दीजिये)

आवागमन के गोरखधंधे के अनुसार उपरोक्त समस्त प्राणी एक न एक दिन अपनी भोग योनि समाप्त करके मनुष्य योनि (कर्म योनि) में आवेंगे। भला विचारिये वह मनुष्य योनि जिसकी ज्यादा से ज्यादा तादाद १॥ या दो अर्ब हो सकती है कितने कल्पांत में सब जीवों को अपने अन्दर से गुज़ार सकती है, साथ ही वह जत्था जिसकी बारी सबसे पीछे होगी उसने कौन से विचित्र कर्म किये होंगे ?

बहुधा आवागमन के रचयिता यह प्रमाण उपस्थित करते हैं कि ईश्वर न्यायकारी है उसने किसी को अमीर किसी को गरीब, किसी को ब्राह्मण किसी को शूद्र, किसी को विद्वान् किसी को मूर्ख, किसी को बाबू किसी को मजूर, किसी को रोगी किसी को निरोगी इत्यादि क्यों बनाया।

आवागमनियों को विचारना चाहिये कि धनी निर्धन, सेठ मजूर, ब्राह्मण, शूद्र का होना, ईश्वर की दयालुता या कर्मफल हैं। अथवा सोसाइटी के संगीन शिकंजे हैं, मनुष्यों का वह भाग जिसने आरम्भ में या वर्तमान में दंभ या छल से शक्ति प्राप्त कर ली है वह दूसरों की शक्तियां विकसित होने का अवसर ही नहीं देता। आवागमन मुख्यतया इसी शक्तिशाली भाग का इलहाम है। थोड़ा रूस की तरफ देखो वहां कोई गरीब अमीर, ब्राह्मण, शूद्र, सेठ, मजूर नहीं है क्या वहां आवागमन नहीं होता. थोड़ा बहुत बुद्धि में फर्क जो होता है उसका भी कारण परिस्थिति है। बहुधा एक वकील का लड़का वकील एक डाक्टर का लड़का डाक्टर तथा एक मजूर किसान का लड़का मजूर किसान ही पाया जाता है। इसका यह कारण नहीं कि एक वकील मरकर वकील और किसान मर कर किसान के यहां पैदा होता है यह परिस्थिति है जो ऐसा बना देती है। यदि दुनिया में सामान्यता का व्यवहार हो जाये तो अमीरी, गरीबी, मजूरी, वकालत ब्राह्मण शूद्र में जो कर्मफल की विद्यमानता है उसका सवाल ही न उठे ?

एक और बड़ी दलील जो सबसे पहिले शायद स्वामी दयानन्द पर उतरी है यह है कि बच्चा पैदा होते ही दूध कैसे पीने लगता है यह पूर्व जन्म का संस्कार है ( इसी को लेकर पं० चमूपति अपनी पुस्तक जवाहर जावेद में लिखते हैं कि मुसलमानों से आज तक इसका जवाब नहीं आया "वाकई दलील भी कुछ ऐसी ही अकाट्य है।")

"१—मुसलमान 'हरकिशक आरद काफिर गर्दद के कायल हैं' वह कुरान के बाहर नहीं जा सकते, हिन्दू किसी ऐसे वाक्य के कायल नहीं हैं जो तर्क या युक्ति शून्य हो उनका उचित शंका उठाना ही हिन्दू धर्म की विशालता का प्रमाण है और उसका समाधान करना धर्माचार्य्यों का कर्त्तव्य है।"

२—मनुष्य का बच्चा पैदा होते वक्त थन में दूध पीता है फिर जीवन पर्यंत यानी ७०-८० वर्ष तक थन में दूध नहीं पीता बाद मर कर फिर पैदा होने पर ७०-८० वर्ष के कबल की घटना जीव को बराबर याद आ जाती है परन्तु नौ

दस महीना के पूर्व की उसको कोई घटना याद नहीं रहती।

महात्मा नारायणस्वामी जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मृत्यु और परलोक" में विविध युक्तियों से यह बात सिद्ध की है कि मनुष्य के मरने तथा गर्भ में आने का जो समय होता है वह इतना थोड़ा होता है कि मिनटों सेकिंडों से भी कम होता है। ( देखो मृत्यु और परलोक पृ० ५५ )

यहां यह सवाल उठता है कि, एक विद्यार्थी २४-२५ वर्ष की आयु में बी० ए० या शास्त्री परीक्षा पास करता है, कारणवश उसी समय उसकी मृत्यु हो जाती है, सेकिंडों के अन्दर वह गर्भ में आ जाता है। पैदा होने पर फिर उसे नीची कक्षा से शुरू करके क्रम अनुसार बी० ए० तक पहुंचना पड़ता है। पं० चमूपति की दूधवाली व हंसनेवाली नजीर एक अक्षर की भी मदद नहीं देती।

मनुस्मृति में लिखा है कि मनुष्य अमुक पाप करने से गाय की योनि में जाता है अमुक पाप करने से बैल, घोड़ा, सुअर का चोला प्राप्त करता है इसी तरह जंगम स्थावर होने का विधान है, दूसरी तरफ़ स्वामी दयानन्द अपनी पुस्तक आर्य्याभिविनय में पचासों वेद मन्त्रों द्वारा ईश्वर की प्रार्थना बताते लिखते हैं प्रभू हमको धन धान्य, पशु, गाय, घोड़े इत्यादिक सब मंगलकारी पदार्थ देने की कृपा करो।

यदि वास्तव में आवागमन का चक्कर सही है तो ईश्वर बग़ैर पाप किये किसको गाय, घोड़ा, सुअर, आम, कटहल सब्जी दाल घास की योनि में भेज दे ईश्वर से जब कोई किसी चीज़ की प्रार्थना करता होगा तब वह हंसता होगा और कहता होगा भाई वास्तव में तुमको इन चीजों की आवश्यकता है तो तुम क्यों नहीं मनुस्मृति के अनुसार लोगों से पाप कराते जिससे ज्यादा से ज्यादा तादाद में गाय, घोड़ा, सब्जी, दाल की योनि में लोग दाखिल हों "मैं (ईश्वर) आवागमन के बंधन से मजबूर हूँ।"

( शेष फिर )

## समाधान

यहां शंका करने वाले महाशय ने एक ही साथ अनेक समस्याओं को उलझा दिया है और बिना अपना सिद्धान्त स्थापित किये मख़ौल उड़ाया है, नियम तो यह होना चाहिये कि जब किसी सिद्धान्त की सत्यता की मीमांसा करना चाहें तो उसको और उसके विरोधी सिद्धान्त को साथ साथ रख कर उन पर तुलनात्मक विचार करें। यदि ऐसा न करेंगे तो वितण्डा हो जायगा। वितण्डा का लक्षण ही यह है कि अपने मत की स्थापना किये बिना ही दूसरे के

मत का खण्डन किया जाय।

आपकी शंका से दो बातें ज्ञात होती हैं—

(१) आपको विश्वास नहीं है कि ईश्वर कर्मों के अनुकूल सुख दुख देता है।

(२) प्राणियों के सभी वर्तमान भेद परिस्थिति के कारण से हैं। अर्थात् चूंकि भिन्न २ प्राणी भिन्न २ परिस्थिति में हैं अतः उनकी दशा भी भिन्न२ है।

यदि आप कर्म-फल के जाल से छुटकारा पाना चाहते हैं तो चलिये छुट्टी हुई। फिर तो आप समस्त मानवी प्रगतियों के लिये कोई प्रेरक शक्ति ही नहीं छोड़ते। 'धर्म' अधर्म' या आप पुण्य शब्दों से अप्रसन्न हैं। अच्छा "उचित अनुचित" ही सही। कहिये उचित, अनुचित का कोई भाव आप के या आपके अनुकूल दूसरों के मन में है या नहीं। अगर है तो उसकी आधार शिला क्या है? क्यों मनुष्य चाहता है कि मैं उचित करूं और अनुचित न करूं। या दूसरे लोग उस के साथ उचित करें अनुचित न करें।

आप भिन्न२ प्राणियों की भिन्नता का कारण परिस्थिति को बताते हैं। परन्तु यह नहीं सोचते कि परिस्थिति भी तो भिन्नता के अङ्गों में से एक है। परिस्थिति की भिन्नता भी तो एक भिन्नता है जिसका कारण बताना चाहिये। एक अवयव को कारण बताना ठीक नहीं। आप का शायद यह विचार है कि मनुष्यों ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है जिसके कारण लोगों को सुख या दुख हो रहा है। अच्छा उन प्राणियों के सुख या दुख के विषय में क्या कहेंगे जो मनुष्यों की उत्पन्न की हुई परिस्थिति से सर्वथा बाहर हैं और किसी प्रकार भी उससे प्रभावित नहीं हो सकते। जैसे प्रशान्त महासागर के नीचे की मछलियां। वस्तुतः परिस्थिति कुछ अंशों तक प्रभाव डालती है सर्वांश में नहीं। इसका मोटा सा प्रमाण यह है कि यदि परिस्थिति ही सब कुछ हो और यदि प्रत्येक प्राणी परिस्थिति का सर्वांश में दास हो तो उस परिस्थिति का परिवर्तन ही कभी न हो सके। आप रूस का दृष्टांत देते हैं। यदि परिस्थिति ही सब कुछ होती तो लैनिन आदि वहां उत्पन्न ही न हो सकते। जिस परिस्थिति में अन्य रूसी थे उसी में टालस्टाय भी था। इसलिये परिस्थिति को केवल एक अङ्ग ही मानना चाहिये' वस्तुतः यदि परिस्थिति के भावका विश्लेषण किया जाय तो यह सब अवस्थाओं का एक जाति वाचक या सामूहिक नाम ही सिद्ध होगा। परिस्थिति क्या चीज है? यही न कि हमारा घर, हमारा, समाज, हमारा शरीर, हमारा देश, हमारी अन्य बातें अमुक प्रकार की हैं। यह सब अमुक

प्रकार की क्यों हैं ? इसका क्या उत्तर है ? आप कह सकते हैं कि अमुक पुरुष राजा है और अमुक दरिद्र। क्योंकि दोनों की परिस्थितियां एक सी नहीं हैं। परन्तु आप यह नहीं सोचते कि इन परिस्थितियों की भिन्नता का नाम ही तो राजपन और दरिद्रपन है। 'परिस्थिति' शब्द ने समस्या को हल नहीं किया। केवल समस्या को एक और रूप दे दिया है।

आप ने पुनर्जन्म विषय पर कुछ आपत्तियां उठाई हैं—पहिली आपत्ति तो प्राणियों की संख्या है 'परंतु प्राणी वस्तुतः इतनी संख्या में नहीं हैं जितना आप समझते हैं। जब तक आप एक नगर के कीट पतंगों को गिन कर दूसरे नगर को चलेंगे उस समय तक यह कीट पतंगे मर कर दूसरे नगर को चल पड़ेंगे और आपकी पुनर्गणना में शामिल हो जायंगे। कितने प्राणी हैं जो दिन में कई बार जीवन बदल देते हैं। फिर आप प्राणि-गणना ही कैसे कर सकेंगे। जब तक आप ठीक ठीक गणना न करें उस समय तक आपकी आपत्ति भी निराधार ही रहेगी आपने यह तो हिसाब लगा दिया कि जितनी आयु मनुष्य की है उतनी आयु कितने अन्य प्राणियों की है और वह बहुसंख्य हैं या अल्पसंख्य। जब तक यह निश्चित नहीं हो सकता, शंका के खड़े होने के लिये स्थान नहीं है। न तो समस्त विश्व के प्राणियों का हमको ज्ञान है। न एकही स्थान के एक दिन के सब प्राणियों का। फिर हिसाब किस आधार पर लगाते हैं। हाँ इस सम्बन्ध में एक बात कह दूं। वह यह कि यदि सर बोस महोदय सभी जड़ पदार्थों में जीव मानने लग जाय तो उनके जीव के लक्षण भी कुछ और ही होंगे और अपने सिद्धांत के वे स्वयं ही उत्तर दाता हो सकते हैं। हम तो जड़ और चेतन जगत में भेद मानते हैं।

बच्चे के दूध पीने की दलील आप स्वामी दयानन्द पर उतरी हुई बताते हैं। परन्तु स्वामी दयानन्द से सैकड़ों बर्ष पूर्व गोतम ने अपने न्याय दर्शन में इसी दलील को दो सूत्रों में लिख दिया था:—

( १ ) पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्ष-भय-शोक सम्प्रतिपत्तेः। ( न्या० ३।१।१९ )

( २ ) प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ॥ ( न्य० ३।१।२२

अर्थात् नवजात बच्चे में हर्ष-भय-शोक तथा भोजन की अभिलाषा पूर्वजन्म के अभ्यास तथा स्मृति का फल है।

जब बच्चा उत्पन्न होता है तो उसको हर्ष-शोक और भय होता है। यह हर्ष, शोक, या भय शारीरिक दृश्य नहीं है किन्तु आत्मिक हैं। बच्चे का मोटा, पतला, रूपवान या कुरूप होना और बात है और बच्चे का दुखित या हर्षित होना, रोना, हँसना और बात है। यदि आपके

विचार में यह पूर्व जन्म के अभ्यास का फल नहीं तो किस बात का फल है। श्री चमूपति जी ने ठीक ही लिखा होगा कि इसका किसी के पास उत्तर नहीं। आप इसका उत्तर दीजिये तब ही जांच हो सकती है।

आप पूछते हैं कि एक बी० ए० पास आदमी मर कर जब फिर जब जन्म लेता है ता उसे २५ वर्ष पहिली दूध पीने की बात क्यों याद रहती और २ वर्ष पहले का बी० ए० का कोर्स क्यों नहीं याद रहता। परन्तु इसका उत्तर तो आप की स्मृति और विस्मृति अर्थात् याद और भूल के मनोविज्ञान सम्बन्धी कारणों की विवेचना से ही ज्ञात हो जाता। आप दूर क्यों जाते हैं? इसी जन्म को लीजिये। पूर्व या अगले जन्म विवादास्पद हों भी। यह जन्म तो निर्विवाद ही सिद्ध है। क्या आपने कभी अनुभव किया है कि आपको बीस वर्ष की बात क्यों याद आ गई और दिन पहले की क्यों याद न आई? जो कारण इसका है वही उसका भी है। एक माता अपने बच्चे को पुस्तक भी पढ़ाती है और मिठाई देने का वचन भी देती है। बच्चे को पाठ तो याद नहीं रहता लेकिन मिठाई का वायदा याद रहता है। क्यों?

आपने एक मोटी बात पर विचार नहीं किया। न्याय के सूत्र में 'अभ्यस्त' शब्द पड़ा है। हर्ष, शोक, भय और भोजन का तो आपको प्रत्येक दिन का अभ्यास रहता है लेकिन बी० ए० के कोर्स का नहीं। क्या आप कह सकते हैं कि आपने पाठ्य पुस्तकों का इतना ही अभ्यास किया है जितना हर्ष-शोक या भोजन की इच्छा का। जिसको आप २५ वर्ष पहली बात कहते हैं वह मृत्यु के क्षण भर पहले भी विद्यमान थी। इसके बी० ए० के कोर्स की तुलना करना ठीक नहीं। एक बात याद रखिये। बच्चे की "दूध पीने की इच्छा" "भोजन लेने की इच्छा" का पर्य्याय है।

एक आपत्ति आपने यह उठाई है कि वेद मन्त्रों में मंगलकारी पशुओं की प्राप्ति की प्रार्थना क्यों है। वस्तुतः हम यह तो प्रार्थना करते नहीं कि ईश्वर हमारी इच्छा पूर्ण करने के लिये लोगों को पशु योनि में भेज दे। हम तो यह प्रार्थना करते हैं कि जो जीव अपने कर्मों द्वारा पशु योनि में आये उनसे हम को कल्याण पहुंचे। इससे उनका आवागमन क्यों खण्डित हो गया? ईश्वर ने भिन्न भिन्न योनियां बनाई ही दो प्रयोजनों से हैं। एक तो उनके द्वारा उन उन जीवों के कर्मों का फल मिलता है। दूसरे उनके द्वारा दूसरे जीवों के कार्यों की सिद्धि होती है। यही तो ईश्वर की सृष्टि का मितव्यय ( Economy) है।

# ऊपर के फेर में

श्री चिन्तामणि "मणि"

"सात दिन बीत गया, पर अभी तक इला भला नहीं किया। भला देखो बहन! यह भी देवी देवतों का कर्म है।"

"नहीं, किन्तु मेरे विचार में एक बात आती है कि संभवतः तुमसे कोई कार्य बिगड़ तो नहीं पड़ा जिसके कारण-वश वह इस प्रकार रुष्ट हैं।"

"बहन! यद्यपि ऐसी बात तो नहीं है किन्तु संभवतः मेरी अनभिज्ञता में यदि मुझसे कोई कार्य बिगड़ पड़ा हो तो उसे चाहिए कि वह क्षमा कर दे। साथ ही उसे हमारी उस भूल को प्रकट तो करना चाहिये।"

"तुमने पूछा था।"

"आप भी पूछने को कहती हैं। आज तीन दिन से तो मैं हजार हजार प्रार्थनायें नित्य-प्रति किया करती हूँ, उसे मनाने की सैकड़ों कोशिशें करती हूँ। उसके पैरों पड़ती हूँ। उसको मुँह मांगा वस्तु देने का वचन देती हूँ, किन्तु... इस कठोर-हृदया देवी का हृदय नहीं पसीजता। मेरा नन्हा बच्चा कैसी घोर पीड़ा सह रहा है। दर्द के मारे भयानक आर्तनाद कर उठता है। जिससे मेरा हृदय टूक टूक हो जाता है। परन्तु हा! यह निर्दया दया का नाम नहीं जानती।"

"देखो बहन! देवी देवता की बात ठहरी, मना चुना कर अपना कार्य निकालो इनसे झगड़ना, या अकड़ना अच्छा नहीं। तुम जितनी प्रार्थनायें करोगी उतना ही तुम्हारे लिये लाभकारी होगा। हमको प्रतीत होता है तुमसे अवश्य कोई कार्य नहीं बन पड़ा है। जिसके कारणवश वह रुष्ट है। अन्यथा आज यह समस्या न उपस्थित हुई होती। देखो, बहुत मनाने पर भी उसके मुँह नहीं सीधे होते।"

"क्या कहूँ बहन मुझसे कुछ कहा नहीं जाता। जैसा आप कहती हैं यदि मुझसे कोई अपराध हो ही पड़ा हो तो क्या वह उसे क्षमा करना नहीं जानती। क्षमा तो सज्जनों का भूषण है बहन!"

"तुम्हारा कहना सत्य है।"

"फिर वह मेरे अपराध यदि भूल में हो पड़े हों तो उसे क्षमा क्यों नहीं करती।"

"देखो बहन स्वाभिमान देवी देवतों की मर्यादा है। यही उनकी एक मात्र शक्ति है। यदि वे अपनी मर्यादा के लिये इस प्रकार का शस्त्र न रक्खें तो उनकी सुने ही कौन?"

"बहन! दीनों से तो अभिमान न करना चाहिये।"

'हां, परन्तु दीनता तो तुममें अब है।'

"संभवता आपका यह कहना मिथ्या है।"

"नहीं, अक्षर अक्षर सत्य है।"

"आप जैसा अनुभव करती हों।"

"मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरा अनुभव सत्य है।"

"जो हो, परन्तु यदि मैं पहिले दीन नहीं थी तो अब दीन हूँ और अपनी भूल पर पश्चात्ताप करती हुई उसके प्रायश्चित के लिये तैयार हूं। वह मेरे अपराध को क्षमा करती हुई मेरे प्राणरूपी पुत्र को मुक्त करें।"

उपर्युक्त बातें दो औरतों के बीच बस्ती के दूसरी ओर पर एक कच्चे मकान के दरवाजे पर हो रही थी। इस मकान के भीतर एक छोटा सा बच्चा चारपाई पर पड़ा हुआ बेचैनी से कराह रहा था। उसको देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती थी कि वह बच्चा भयङ्कर रोग से ग्रसित है। उसके सम्पूर्ण शरीर में फफोले पड़े हुए थे। संभवतः यह गर्मी की अत्यधिकता का परिणाम था। परन्तु उसके मूर्ख माता पिता के मस्तिष्क में यह बात न आती थी कि यह एक भयंकर रोग है। उस नन्हे बालक की पीड़ा निरन्तर बढ़ रही थी। वह बीच बीच में भयंकर चीत्कार करता, माता हजारों मानतायें मनाती हुई अश्रुधारा प्रवाहित करती, पिता ऊपर के फेर में चक्कर काटता।

"ऊपर के फेर" जैसे शब्द से महानुभाव बहुत कम परिचित होंगे अतएव उसका सूक्ष्म विवेचन हम आप लोगों के समक्ष रक्खे देते हैं।

साधारण जनता ही नहीं, पढ़े लिखे लोग भी रोगी को चिकित्सक के पास नहीं ले जाते प्रत्युत तान्त्रिकों के फेर में पड़े रहते हैं और उनकी अन्तरात्मा में ईश्वर से अतिरिक्त शक्तियों का भाव ही नहीं वरन् उनका उनपर दृढ़ विश्वास रहता है। भूत, प्रेत, जादू, मन्तर तथा बहुदेवतावाद आदि सब उनकी दृष्टि में सत्य हैं। ऐसे लोगों का कथन है कि जिस प्रकार एक राजा के लिये सेना, सवार, पुलिस पैदल आदि बाह्य शक्तियों की व्यवस्था है उसी प्रकार ईश्वर ने अपने लिये भूत, प्रेत, देवी, देवता आदि को रख छोड़ा है। परन्तु उन महानुभावों को यह विदित नहीं कि बाह्य शक्तियों की आवश्यकता एकदेशी को है सर्वदेशी को नहीं। ईश्वर तो घटघट व्यापी है। यदि यह कहा जाय कि नहीं उसे आवश्यकता ही है तो उसकी सर्वव्यापकता में दोष आ जाता है।

रोगी को औषधि चाहिये। जिससे रोग की शक्ति क्षीण हो। परन्तु ऐसे लोग रोगी को औषधि न देकर मिथ्या प्रपंचों में पड़ते हैं। जिससे रोगी भयंकर रोगग्रस्त हो अधिक कष्ट सहता है। इस प्रकार बहुत बार कष्ट सहने पर भी लोग नहीं सोचते कि यह हमारी कैसी भयंकर भूल है। इसी बहुदेवतावाद या तन्त्र मंत्र को "ऊपर का फेर" कहते हैं।

[ २ ]

जब सान्ध्य सूर्य की कनक किरणें दिगन्त से अपनी आभा समेट चुकी थीं।

जब नभचर किल्लोलें करते हुए आकाश मार्ग से अपने अपने पर्णकुटियों को लौट रहे थे। मनुष्यजन अपने अपने घरों के दरवाजों पर छिड़काव के साथ पलंग पर श्रमजीवी हो रहे थे। तब चन्द्रदेव उदयाचल मार्ग से धीरे धीरे क्षितिज पर चढ़ते दिखाई दिये। तब तारागण मन्द मन्द मुस्कराहट के साथ हँसने लगे। तब पवनदेव प्रशान्त वदन हो विश्राम कर रहे थे। तब बस्ती के एक गृह से एक व्यक्ति अपने नन्हें बच्चे को कलेजे से लगाये हुए निकला और एक ओर जूतों से टपाटप आवाज करता हुआ चल पड़ा। उसका मन शुष्क था। उसके मुख पर चिन्ता की ज्वाला भभक रही थी। उसका बदन पसीने से शराबोर था। वह जल्दी जल्दी चलकर एक गृह के दरवाजे पर रुका। यह सत्य है कि उसके नेत्रों में अश्रुबिन्दु भी झलक जाते थे।

उस गृह के अन्दर रोशनी के प्रकाश में तीन व्यक्ति बैठे दिखाई दिये। उन तीनों के हाथ में मिट्टी के करवे थे। सामने एक बोतल रक्खी हुई थी। आगन्तुक को देखते ही उनमें से एक व्यक्ति उठा और बाहर आकर उसने एक चारपाई बिछा दी। वह व्यक्ति उस पर बैठ गया।

कुछ क्षण तक वह व्यक्ति वहीं बैठा रहा। तत्पश्चात् उसको भी अन्दर बुलाया गया। वह बच्चे को लेकर अन्दर गया और एक ओर जा बैठा।

अन्दर जाकर उसने देखा एक ओर फूल का ढेर लगा हुआ है। जहाँ फूल रक्खा हुआ है, वह जमीन शुद्ध और स्वच्छ है अतएव वहां पर पहले बैठे हुए उन तीनों व्यक्तियों में से एक ने उन फूलों में से फूलों का एक हार निकाला और उस शुद्ध और स्वच्छ जमीन पर एक धूह पर चढ़ा दिया। इस धूह को देवी की चौरी कहते हैं। तत्पश्चात् आग मंगवाई और उसी चौरी के पास रख कर उस पर कुछ सुगंधित पदार्थ डाला। समस्त गृह सुगंधमय हो गया।

सुगंधित पदार्थ के फैलते ही वहां एक विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया। पहले बैठे हुए तीन व्यक्तियों में से एक व्यक्ति उठकर नाचने कूदने और गाने लगा।

इस तरह वह लगभग एक घंटे तक बराबर गाता रहा परन्तु उसका गाना समाप्त न हुआ। अतः वहां पर बैठे हुए दूसरे व्यक्ति ने चाहा कि रोकें क्योंकि जिस कार्य के निमित्त हम लोग यहां एकत्र हुए हैं उसका आरम्भ नहीं हुआ है। परन्तु तीसरे बैठे हुए व्यक्ति ने उसे क्षण भर और ठहर जाने को कहा।

लगभग आध घंटे के पश्चात् वह पुनः उठा और हाथ जोड़ कर बोला—"माता, हम लोग तेरी सेवा में बड़ी देर से बैठे हैं। पर तूने अभी तक अपने शरण में स्थान नहीं दिया है।"

उसने इसकी बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया और अपने गाने की धुन में मस्त रहा।

अब आगन्तुक बोला, "माता, आज आठ दिन व्यतीत हो गये, क्या कारण है कि हम पर कृपादृष्टि नहीं हो रही है।"

अब उसने अपनी रागिनी बन्द की और कहा, "तेरी प्रार्थना तो मैं सुनना ही नहीं चाहती थी, परन्तु मेरे भक्तों की प्रबल इच्छा देख मुझे विवश होना पड़ रहा है।"

व्यक्ति ने पूछा, "माता हमसे कौन सा अपराध बन पड़ा, जो हमारी प्रार्थना सुननी आपको स्वीकार नहीं है।"

"अरे, अपराध ! अपराध तो तूने और तेरी उस लक्ष्मी ने ऐसा किया है कि जिससे मेरी अन्तरात्मा अति प्रसन्न है। मेरी इच्छा नहीं होती कि मैं तुम लोगों की ओर फूटी आंख देखूँ। भले ही किया जैसा किया वैसा आप ही भोग रही है और तुझे भी मालूम हो गया होगा। अब देखूंगी मैं कि तेरे बच्चे की कौन रक्षा करता है।"

"माता, अच्छा यदि हम लोगों से अपराध बन पड़ा है तो उसे क्षमा करें। हम लोग तो आपके अबोध बच्चे हैं। बच्चों से अपराध होना तो स्वाभाविक है। बच्चों की रक्षा का भार तो माता के हाथों में ही रहता है।"

"अरे यह संसार का नियम है रे, जब मुसीबत पड़ी तब बच्चे बन जाते हैं, अन्यथा अभिमान में मदोन्मत्त होकर किसी की परवाह ही नहीं करते। वही दशा आज तेरी है।"

"माता आपका कहना वस्तुतः सत्य है, किन्तु साथ ही इसके यह भी सत्य है कि बच्चे मां के बल पर ही अभिमान करते तथा मदोन्मत्त होते हैं। बस, अब मां रहम करो और मेरे इस नन्हें बच्चे का क्लेश हरो।"

"अच्छा, जा दुःख दूर हो जायगा।"

[ २ ]

प्रातःकाल का समय था। निशादेवी का साम्राज्य पृथ्वीतल से विलुप्त हो चुका था। सूर्यदेव उदयाचल मार्ग में चमक चुके थे। चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। प्राणीजन अपने नित्य नैमित्तिक कार्य में निरत हो रहे थे। ऐसे समय ही एक भीषण आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। भयानक कोलाहल मच गया।

कुछ क्षण तक विकट चीत्कार मचता रहा। तत्पश्चात धीमे धीमे स्वर में परन्तु रोमांचकारी रोदन होने लगा। लगभग कई घण्टे तक यही समस्या उपस्थित रही।

लाला दयाल शंकर के कई पुत्रों में से एकमात्र यही पुत्र बच रहा था। आज वह भी उनसे सदैव के लिये विलग हो गया। बेचारे पुत्रहीन हो गये।

# शतपथ ब्राह्मण [ सभाष्य ]

## काण्ड १—अध्याय ३ ब्राह्मण १

## ( १ )

### अनुवाद

८—स वै सम्मृज्य-सम्मृज्य प्रतप्य-प्रतप्य प्रयच्छति । यथाऽमर्शं निर्णिज्यादेवममर्शमुत्तमं परिक्षालयेदेवं तत्तस्मात्प्रतप्य—प्रतप्य प्रयच्छति ।

८—वह मांज मांज कर और तपा तपा कर (अध्वर्यु को) देता जाता है। जैसे बर्तनों को पहले छूकर (पकड़ कर) मांजते हैं और बिना छुये (बिना पकड़े) धोते हैं उसी प्रकार वह तपा तपा कर देता जाता है।

९—स वै स्रुवमेवाग्रे सम्मार्ष्टि। अथेतराः स्रुचो योषा वै स्रुग्वृषा स्रुवस्तस्माद्यद्यपि बह्व्य इव स्त्रियः सार्धं यन्ति य एव तास्वपि कुमारक—इव पुमान् भवति स एव तत्र प्रथम एत्यनूच्य इतरास्तस्मात्स्रुवमेवाग्रे सम्मार्ष्ट्यथेतराः स्रुचः ।

९—वह पहले स्रुवों को मांजता है फिर स्रुकों को। 'स्रुक्' स्त्रीलिङ्ग है और 'स्रुव' 'पुलिङ्ग'। इसलिये यद्यपि कई स्त्रियां साथ साथ चलती हैं तब भी यदि उनमें चाहे एक बच्चा भी पुरुष हो तो वह आगे चलता है। और शेष सब पीछे चलती हैं। इसलिये वह स्रुव को पहले मांजता है और स्रुकों को पीछे।

१०—स वै तथैव सम्मृज्यात्। यथाग्निं नाभिव्युक्षेद्यथा यस्माऽअशनमाहरिष्यन्त्स्यात्तं पात्रनिर्णेजनेनाभिव्युक्षेदेवं तत्तस्माद् तथैव सम्मृज्याद्यथाग्निं नाभिव्युक्षेत् प्राङिवैवोत्क्रम्य ।

१०—वह इस प्रकार मांजे कि कुछ आग में न पड़ जाय। क्योंकि जिसको भोजन ले जायगा (अर्थात् अग्नि को) उस पर पात्र की अशुद्धि का अंश पड़ जायगा। इसलिये वह बर्तनों को इस प्रकार मांजे कि अग्नि में कुछ न पड़े। अर्थात् पूर्व की ओर हट कर।

११—तद्धैके। स्रुक्सम्मार्जनान्यग्नावभ्यादधति वेदस्याहाभूवन्त्स्रुच एभिः सममार्जिषुरिदं वै किञ्चिद्यज्ञस्य नेदिदं बहिर्धा यज्ञाद्भवदिति तद् तथा न कुर्याद्यथा यस्माऽअशनमाहरेत्तं पात्रनिर्णेजनं पाययेदेवं तत्तस्माद् परास्येदेवैतानि ।

११—कुछ लोग स्रुकों के मांजने की घास को (आहवनीय) अग्नि में डाल देते हैं। उनका कहना यह है। "यह

वेद (यज्ञ) के थे, इनसे स्रुक मांजे गये। जो कुछ यज्ञ का है वह उससे बाहर न जाय।" परन्तु उसको ऐसा करना नहीं चाहिये। क्योंकि इससे वह जिसके लिये भोजन ले जायगा (अर्थात् अग्नि के लिये) उसको बर्तनों का मैल पिलायेगा इसलिये उसको दूर फेंक देना चाहिये।

१२—अथ पत्नीं सन्नह्यति। जघनार्धो वाऽएष यज्ञस्य यत्पत्नी प्राङ् मे यज्ञस्तायमानो यादिति युनक्त्येवैनामेतद्युक्ता मे यज्ञमन्वासाताऽईति।

१२—अब वह (यजमान की) पत्नी की (कमर में मूंज की रस्सी ) बांधता है (मौंजी बन्धन कृत्य करता है)। यह जो पत्नी है वह यज्ञ का पिछला अर्द्ध-भाग है। "यह यज्ञ मेरे सामने बढ़ता ही जाय।" ऐसा वह विचार करती है जब मौंजी बन्धन किया जाता है और (अग्नीध्र मौंजी बन्धन के समय) विचार करता है कि "यह मेरे यज्ञ के पास कटि-बद्ध होकर बैठे।"

१३—योक्त्रेण सन्नह्यति। योक्त्रेण हि योग्यं युञ्जन्त्यमेध्यं वै पत्न्या अमेध्यं यदवाचीनं नाभेरथैतदाज्यमवेक्षिष्यमाणा भवति तदेवास्या एतद्योक्त्रेणान्तर्दधात्यथ मेध्येनैवोत्तरार्धेनाज्यमवेक्षते तस्मात्पत्नीं सन्नह्यति।

१३—मौञ्जी बन्धन योक्त्र* (एक रस्सी होती है) से किया जाता है। योक्त्र से ही योग्य (अर्थात् गाड़ी के बैल) को बांधते हैं। पत्नी का वह भाग जो टुण्डी के नीचे है अपवित्र है। इससे ही वह घृत की ओर देखती हुई बैठेगी। इसलिये वह उसके उस भाग को रस्सी से छिपा देता है जिससे वह ऊपर के पवित्र भाग से ही वह घृत को देखे। इसीलिये वह गृह पत्नी का मौंजी बन्धन करता है।

१४—स वाऽअभिवासः सन्नह्यति। ओषधयो वै वासो वरुण्या रज्जुस्तदोषधीरेवैतदन्तर्दधाति तथो हैनामेषा वरुण्या रज्जुर्न हिनस्ति तस्मादभिवासः सन्नह्यति।

१४—वह कपड़े के ऊपर मौंजीबन्धन करता है। कपड़ा ही औषधियां का (अर्थात् कपास के वृक्ष का प्रतिनिधि) है। और (मौंजी) वरुण की रस्सी है। इस प्रकार वह औषधि को उसके और रस्सी के बीच में रख देता है। इस प्रकार उस (पत्नी) को वरुण की रस्सी सताती नहीं। इसलिये कपड़े के ऊपर बांधता है।

*मूंज की रस्सी का नाम योक्त्र है और बैल का नाम "योग्य" है। 'योग्य' का अर्थ है (जुतने योग्य)।